Year 1, Issue 1
Jan.-March, 2004

VASUDHA A CANADIAN PUBLICATION

EDITOR - PUBLISHER : SNEH THAKORE

कैनेडा से प्रकाशित साहित्यिक पत्रिका

वसुधा

संपादन व प्रकाशन
स्नेह ठाकुर

वर्ष १ - अंक १, जनवरी-मार्च २००४

वसुधा

संपादक व प्रकाशक : स्नेह ठाकुर

शीर्षक	रचयिता	पृष्ठ
संपादकीय		२
नये वर्ष की नयी सुबह	सरन घई	३
ज़लज़ला	डॉ. सुशील कुमार फुल्ल	४
सुपात्र	स्नेह ठाकुर	८
रावण-दहन	सूर्यकांत नागर	८
प्यार क्या है?	डॉ. अम्बाशंकर नागर	९
जिसे प्यार करते हो किये जाओ	डॉ. अम्बाशंकर नागर	९
वटवृक्ष	डॉ. सरला अग्रवाल	१०
इंसानियत का जनाज़ा	आचार्य संदीप त्यागी 'दीप'	१६
ज़िन्दगी : पहा ी गाँव	डॉ. किशोर काबरा	१७
अगर मैं पालता तोता	डॉ. किशोर काबरा	१७
मिट्टी की तासीर	डॉ. रामकुमार गुप्त	१८
दृष्टिकोंण	सूर्यकांत नागर	१८
दुर्घटना या प्रारब्ध	स्नेह ठाकुर	१९
विकल्प	डॉ. शशि अरोरा	२८
नौकरानी	सूर्यकांत नागर	२८
एक अनुभूति	डॉ. अम्बाशंकर नागर	२९
हाइकु	आचार्य रघुनाथ भट्ट	२९
प्रिय हर्षवर्धन	डॉ. परेश	३०
शत् शत् नमन करूँ मैं	डॉ. सुशीला गुप्ता	३३
बेनाम रिश्ता	निर्मल सिद्धू	३३
नियति	सुभाषिणी खेतरपाल	३४
गज़ल	श्यामसुंदर सूरी	३५
मेहमान	डॉ. उषादेवी कोल्हटकर	३६
वन में स्वर्ण-मृग	भुवनेश्वरी पाण्डे	४०
भारत और हिन्दुस्तान	राजेन्द्र 'राजेश'	४१
सच!	पाराशर गौ	४८
मृत्यु और अमरता	आचार्य डॉ.प्रेमचंद श्रीधर	४९
फेमीनिज़म	डॉ. रंजना हरीश	५०
ब बोली मुखरा	स्नेह ठाकुर	५९
परिचय एवं आभार		६०

रचनाओं में निहित विचार तथा मन्तव्य रचनाकारों के निजी विचार तथा मन्तव्य हैं। 'वसुधा' रचनाकारों के विचारों के लिए उत्तरदायी नहीं है। प्रकाशक की आज्ञा बिना कोई रचना किसी प्रकार उद्धृत नहीं की जानी चाहिए। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा।

रचनाएँ भेजने के लिए सम्पर्क पता :

16 Revlis Crescent, Toronto, Ontario M1V-1E9, Canada

संपादकीय संपादकीय (अंक १, जनवरी-मार्च २००४)

संस्कृति और भाषा का चोली-दामन का साथ है। संस्कृति भाषा के बिना जीवित नहीं रह सकती। संस्कृति को जिलाए रखना है तो भाषा को जिन्दा रखना अति आवश्यक है। इस तथ्य से सभी परिचित हैं।

विदेश में भाषा को जीवित रखना दुरूह कार्य की श्रेणी में आ जाता है क्योंकि यह एक ऐसी चिकनी पहा ी के समान है जिस पर एक-कदम आगे बढ़ते हैं तो चार-कदम पीछे घिसट जाते हैं। अप्रवासी भारतीय समाज इस चुनौती का ब ा ही सराहनीय ढ़ंग से सामना कर रहा है। सभी अपनी भरसक इस दिशा में प्रयत्नशील हैं।

सरस्वती माँ ने मुझ अकिंचन पर अपनी कृपा-दृष्टि डाल अपनी उपासना के अवसर प्रदान किए हैं। उन्हीं की कृपा से कुछ थो ा-बहुत साहित्य-सृजन, साहित्य-अर्चना से जु ी रहती हूँ। भारतीय व नार्थ-अमेरिकन पत्रिकाओं तथा साहित्य की विभिन्न विधाओं में लिखी अपनी पुस्तकों द्वारा यथासम्भव माँ सरस्वती की उपासना का प्रयास करती आ रही हूँ। यद्यपि, यह प्रयास बहुत ही छोटा, सागर में एक बूँद की तरह है।

प्रयासों की इस ल ी में एक क ी और जो रही हूँ, 'वसुधा'। इस बार मेरा प्रयास है कि भारतीय साहित्यकार व अप्रवासी भारतीय साहित्यकारों से, वसुधा के पाठकों को अवगत कराया जाए। हिन्दी साहित्य और भारतीय संस्कृति संसार के कोने-कोने में फले-फूले।

इतिहास अतीत की व्याख्या है। साहित्य वर्तमान का दर्पण है और समाज का भविष्य निर्माता भी। साहित्यिक गतिविधियों द्वारा ही हम, भारतीय समाज - प्रवासी व अप्रवासी -का, न केवल वर्तमान उज्ज्वल बनाएँगें वरन् उज्ज्वल भविष्य की नींव, ठोस आधारशिला का निर्माण भी करेंगे।

जहाँ एक ओर साहित्यकार के लिए स्वान्तः सुखाय हेतु, आत्माभिव्यक्ति हेतु लेखन जरूरी हो जाता है, उसके बिना वह रह नहीं सकता, लिखना श्वास लेने की प्रक्रिया के समान है; वहीं दूसरी ओर साहित्य-प्रेमियों द्वारा उसका पठन भी उतना ही महत्वपूर्ण है। साहित्यकार की रचनाओं का पाठकों द्वारा पठन साहित्य का चरमोत्कर्ष है। सभ्य, सुसंस्कृत समाज के लिए ये दोनों ही एक-दूसरे के पूरक हैं।

पाठकगण वसुधा आपके हाथों में है। इसका भार आपके स्कंधों पर भी है। भारतीय राजभाषा-राष्ट्रभाषा को कोने-कोने में पहुँचाना, उसे यथोचित सम्मान दिलाने का दायित्व जितना साहित्यकारों का है, पाठकों का दायित्व उससे किसी भी दशा में कम नहीं। इसका पठन-मनन कीजिए। आपकी प्रतिक्रियाओं का सदैव स्वागत है। आपका सहयोग न केवल वांछनीय है अपितु निःसंदेह सदैव ही सराहनीय होगा। हम सब हाथ की उँगलियों के समान हैं जो कि कार्यरत हो बहुत कुछ कर सकती हैं पर जब वो एक मुट्ठी में बँध जाती हैं तो सशक्त हो जाती हैं। हम सभी को इस प्रयास-कर्म में अपना-अपना धर्म निभाने के लिए सशक्त मुट्ठी बनना है। साहित्यकारों की उँगलियों से जु ीं पाठकों की उगँलियाँ ही लक्ष्य का अंतिम प ाव है। अतः पाठकों से अनुरोध है कि जिस तरह वो अभी तक प्रशंसनीय उत्साह से आगे बढ़ रहे हैं उसी तरह वो उत्साह की डोर पक ा इस पहा ी पर चढ़ते चले जाएँ, शिखर कैसे न मिलेगा।

सस्नेह,

स्नेह ठाकुर

नये वर्ष की नयी सुबह

सरन घई

नये वर्ष की नयी सुबह की प्रथम किरण,
जब आँगन द्वारे पर पहली दस्तक देगी,
बीते वर्ष के सभी सुखद और दुखद क्षणों की,
यादें विस्मृत करके नयी उमंगें देगी।

भूल जायेंगे हम जो पिछले वर्ष हुआ था,
कैसे बीती होली कैसा मना दशहरा,
कैसे दीवाली पर जगमग दीप जले थें
कैसा पतझ कैसा मधुर बसंत हुआ था।

भूल जायेंगे वो सब क्षण जो बीत गये हैं,
भूल जायेंगे झेली जो विपदाएँ हमने,
भूल जायेंगे उन सब सुखद क्षणों की यादें,
भूल जायेंगे तो ी जो बाधाएँ हमने।

हम जीना प्रारंभ करेंगे नया वर्ष जब,
पिछला वर्ष खो चुका होगा महाकाल में,
शीतकाल में जैसे औंधा प ा हो मटका,
या खो जायें साँसें जैसे अंतकाल में।

फिर से होगी सुबह पुनः निकलेगा सूरज,
फिर एक और कहानी का प्रारंभन होगा,
फिर इक और लिखी जायेगी कविता,
फिर इक गज़ल के अशआरों का लेखन होगा।

फिर आयेगी होली फिर दीवाली होगी,
फिर बसंत ऋतु आयेगी फिर हरियाली होगी,
फिर फूटेगी कोंपल फिर गाएगी कोयल,
फिर गोरी के मुख पे लाज की लाली होगी।

फिर सज जायेगी सुंदर फूलों से क्यारी,
सरन भ्रमर मुख चूम सुमन रस पान करेंगे,
नये वर्ष के प्रथम भोर की प्रथम घ ी में,
नये गीत नव कविता के सोपान रचेंगे।

जग में चारों ओर शांति के गूँजेंगे स्वर,
बोल सुरक्षा और प्रगति के गहरे होंगे,
हारेगी दानवता जीतेगी मानवता
नये वर्ष के सारे पृष्ठ सुनहरे होंगे। xxxx

ज़लज़ला

डॉ. सुशील कुमार फुल्ल

एक वीभत्स अहसास। एक झुरझुरी। एक कँपकँपी। गहरे पानी में डूबते हुए व्यक्ति का आर्त्तनाद..छप..छप छपाक्। उसने पुनः ताबूत में झाँकने का प्रयास किया...स्याह काली रात..छप ..छप छपाक्।

अँधेरा उतरने लगा था।

वह अभी भी आँगन के कोने में स्थित पे के नीचे बैठी थी, आत्म-संवाद में लीन।

बौखलाया-सा वह कमरे से बाहर आया और बोला - यहाँ बैठी क्या करती हो? जब फोन आता है तो तुम बात नहीं करती और जब लिंक कट जाता है, तो कुनमुनाने लगती हो।

वह चुप ही रही लेकिन उसका मौन ही मुखर हो उठा। अब क्या कुनमुनाना जब लिंक ही कट गया तो बात किससे करूँ। यही तो वह पे है, जहाँ रात भर माँ की अस्थियाँ लाल थैली में टँगी रही थीं। जब तक शरीर में जान-प्राण हैं, सब सही लगता है.. फिर अपने ही प्रियजनों से डर लगने लगता है। वह जिंदा थी, तो घर के अंदर, अस्थियाँ चुनकर लाए, तो लटका दिया पे पर। जीव है, तो जहान है..जीव उ न-छू हुआ नहीं कि सब बियाबान है।

उसे लगा कि वह धू-धू करके जल रही थी।

फोन पर वह बार-बार कह रहा था - सोल्जर, लाइन मिल गई है, बात क्यों नहीं करते। लेकिन कोई आवाज़ ही नहीं आ रही थी, केवल आप्रेटर चिल्ला रहा था।

वह हकबकाया-सा ख ा था..विभ्रम के जाल में बिंधा। वास्तव में हम जैसा चाहते हैं, उसी के अनुरूप हमारे कान हैं। बजने लगते हैं..और क्षणभर के लिए हम आत्म-सम्मोहन में चले जाते हैं ..फिर यथार्थ की धरती पर लौटते ही सब चकनाचूर हो जाता है।

अविश्वास भरी आँखों से, उसने पति को देखा।

वह फूट प ा - तुम क्या समझती हो, मैं अपने बेटे की अवाज़ भी नहीं पहचानता.. उसकी आहट भी मेरी साँसों में बसी है।

पे पर टँगी लाल थैली...सोल्जर बेटे की आहट निरन्तर दूर सरकती जा रही साँय-साँय की ध्वनि में भटकती हुई पदचाप।

फोन की घंटी फिर खनखना उठी। उत्कंठित मन। फोन उठाया परन्तु कोई बोल ही नहीं रहा था।लाइन फिर कट गई थी।

x-x-x-x

थिंग्ज़ फाल अपार्ट,

दी सैन्टर कैन नाट होल्ड ,

मीयर अनार्की इज़ लूज्ड अपोन दी वर्ल्ड।

वह जब भी एकान्त में डूबता है, तो प्रायः डब्ल्यू पी यीट्स की पंक्तियाँ ज़ोर-ज़ोर से दोहराने लगता है..मानों गीता के श्लोकों में शांति ढूँढ़ रहा हो।संभवतः ऐसा करने से उसे आत्म-बल मिलता है..फिर वह व्याख्या करने लगता..जिसे अनहद नाद की भाँति वह स्वयं ही सुनता है. जलज़ले आने लगे हैं..पृथ्वी काँपने लगी है. महाभारत शुरू हो गया है..कौन किसका गला काटेगा, अर्जुन को नहीं मालूम..युद्ध की आचार-संहिता तो विजय से निर्धारित होती है..शब्द-वाण उ ने लगते हैं..फिर कभी अमरीका के बम-वर्षक अफगानिस्तान के तोरा-बोरा में लादेन को ढूँढ़ते सब कुछ स्वाहा कर देते हैं..और कभी इज़राइल के टैंक पैलिस्तीन की गलियों में दहा ते हैं।

उस की चेतना में कँपकँपी हुई। गीद किसी जंगली जानवर के पंजों में फँस गया था..अमर से अमरीका..अमरीका में बने ताबूत..भारतीय सैनिकों के लिए। उसे लगा एक ऐसा ही ताबूत उसके घर की छत पर आ कर टिक गया है..छत भ भ ा कर नीचे आ गई है..और वह वहीं दफन हो गया है..बर्फ में दब जाना..घुटन..साँसों का जम जाना..छप .. छप..छपाक् करके सागर की अतल गहराइयों में समाधिस्थ होना..ज़लज़ला आता है, तो सब कुछ धराशायी हो जाता है।

ज़लज़ला आ गया था। वह ह ब ाकर बाहर दौ ा। बोला - शांति, सुनो तो। क्षण में यहाँ, क्षण में वहाँ होती हो। कहीं टिकती ही नहीं।

'क्या है?' उसने मरी-सी आवाज़ में पूछा।

'अरी, कुछ तो बोलो। ट्रेन में कोई अग्नि-स्वाहा हो जाए..कोई पेट में छुरा घोंप दे...बर्फ में दफन हो जाए..ज़लज़ले में छत के नीचे दब जाए..कोई सैप्टिक टैंक में ही गिर जाए..कैसा लगता होगा।'

'तुम्हें कुछ अच्छा नहीं सूझता..जलना..मरना..डूबना..पता नहीं, तुम्हारी सुरती कहाँ लगी रहती है आजकल। राम नाम जपो..चित्त शांत हो जाएगा।'

वह पार्किन्सन रोग से ग्रस्त मरीज़-सा डोलता हुआ एक कुर्सी को पक कर ख ा हो गया। और शून्य में घूरने लगा।

x-x-x-x

थिंग्ज फाल अपार्ट,

दी सैन्टर कैन नाट होल्ड,

मीयर अनार्की इज़ लूज़ अपॉन दी वर्ल्ड।

वह बुदबुदा रहा था। अराजकता में व्यवस्था ढूँढ़ने का प्रयत्न। कितना ब ा काम किया है सरकार ने। इतिहास में पहली बार। सैनिकों के शव ताबूत में उन के घर पहुँच रहे हैं। राष्ट्र का उनके प्रति विनम्र नमन और ऊपर से पैट्रोल-पम्प तथा गैस-एजेन्सियों से अभिषेक। उसके नथुनों में पैट्रोल चिपक गया। साँस धौंकनी की तरह चलने लगी। बर्फीले पहा ों पर चढ़ते सैनिक और अमरीका के पीछे भागता राष्ट्र..उनका मुखापेक्षी..पाहु बन गया देश..आई फाल अपॉन दी थार्नज़ आफ लाइफ, आई ब्लीड..वह लहूलुहान हो गया था।

उसने हवा में थूक दिया।

फोन की घंटी फिर खनखनाने लगी लेकिन इस बार उसने फोन उठाया ही नहीं.. फोन कोई अच्छी खबर लाएगा, उसे संदेह हो गया था।

वालिया परिवार का दृश्य उसकी आँखों के सामने था..फोन की घंटी ने सब कुछ अस्त-व्यस्त कर दिया था। अकेली संतान। हाहाकार मच गया था। जिलाधीश महोदय स्वयं ढ़ारस बँधाने आए थे..विनोद की कुर्बानी पर देश को गर्व है..उसके शौर्य की चर्चा सब की ज़ुबान पर है। मैं सरकार की ओर से सान्त्वना देने आया हूँ..विनोद अमर हो गया। और उसने बुज़ुर्ग के पाँव छू लिए। उपस्थित भी विह्वल हो उठी थी।

न्यूज़ चैनल की कैमरा टीम भी पहुँच गई थी..यह टीम वास्तव में गत एक मास से यहीं घूम रही थी। बिना लाग-लपेट के उन्होनें पूछा था - आप का बेटा देश पर कुर्बान हो गया, आप क्या महसूस करते हैं?

बुज़ुर्ग की आखें डबडबायी.....देह में बेबसी की सरसराहट हुई परन्तु मौन बना रहा.. जो कह रहा था - आप अपने को मेरी स्थिति में रखकर देखो..कैसा महसूस होगा..वह चुप ही रहा लेकिन घर का परिदृश्य स्वयं बोल रहा था..बूढ़ी माँ आँसू टकताती एक कोने में बैठी थी..अपंग बहन बिस्तर पर लेटी थी।

'आपके बेटे की मृत्यु तो पीस एरिया में हुई है।' मशीन हो गए पत्रकार ने पूछा।

'तो?' न चाहते हुए भी बुज़ुर्ग के मुँह से निकल गया।

'मुआवज़ा कम मिलेगा।'

'मुआवज़ा?' अब बुज़ुर्ग फूट-फूट कर रोने लगा।

न्यूज़-चैनल को तो यही दृश्य चाहिए था। वे तुरन्त इसे फिल्माने में लग गए।

स्वामी में विस्फोट हो गया था। बोला - मृत्यु तो मृत्यु होती है। और अब कौन-सा एरिया पीस एरिया रह गया है। जम्मू-कश्मीर, हिमाचल या गुजरात. . .अयोध्या या फिर संसद? कहाँ है पीस एरिया. . सारा भारत धधकता हुआ समर-स्थल है। नेताओं के भाषणों एवं आश्वासनों में जरूर कोई पीस एरिया होगा. . सब जगह आतंक के भूत मण्डरा रहे हैं, सब ग ब ा गया है। हाँ, जहाँ नेता होते हैं, वहाँ कुछ नहीं होता. . उन्हें सुरक्षा का दैवी वरदान है। मरता तो आम आदमी ही है।

बुजुर्ग अब तक कुछ-कुछ सहज हो गया था। उसका अक्रोश उम प ा था. . राष्ट्र भक्ति के बिल्ले चिपका दो सब पर और आप खुद बुलेट-प्रूफ जैकट पहनकर. . बुलेट-प्रूफ भाषण कक्षों में ख होकर सीमा पर सैनिकों को सम्बोधन करते रहो. . वृद्ध के अट्टहास में अजीब किस्म का दर्द था।

टी.वी. को तो खबर चाहिए थी। और वह बन गई थी। भले ही खबर बनाने-निकलवाने के लिए किसी के जख़्मों पर नमक ही क्यों न छि कना प ा हो।

x-x-x-x

स्वामी घर पहुँचा, तो भी फोन की घंटी बज रही थी लेकिन शांति फोन सुनना ही नहीं चाहती थी. . हवा में लहराता हुआ खंजर। दस दिन पहले उनकी फोन पर बात हुई थी। और वह चहक उठे थे। हैड-क्वार्टर पर रिपोर्ट करने के अगले ही दिन वह सीमा पर पैट्रोल-पार्टी लेकर गया था। खूब एडवेन्चर रहा। उन्होंने शत्रु के दो सैनकों को बन्दी बना लिया था। वापिस लौट कर उसने अपने घर फोन किया था, इस वायदे के साथ कि तीन दिन बाद बुधवार सायं सात बजे वह फिर फोन करेगा. . लेकिन फोन नहीं आया और भय की तलवार माँ-बाप पर लटक गयी थी।

घर में और कोई बात ही नहीं होती थी. . बस निखिल का फोन नहीं आया. . निखिल का फोन नहीं आया। शायद तनाव बहुत ज्यादा बढ़ गया है. . सीमा पर लगातार चौकसी करते सैनिक. . पल-पल मरते सैनिक. . स्वामी के मन में अचानक बर्नार्ड शा घुस गया। . . शांति, बर्नार्ड शा का नाम सुना है?

'मैंने कुछ नहीं सुना। क्या नये-नये प्रसंग निकालते रहते हो।'

'प्रसंग नहीं, यह सच्चाई है। और फिर सच्चाई से हम कब तक भागते रहेंगे. . शा का मानना है कि युद्ध अपराध है. . और सैनिक अपने शत्रु सैनिकों को इसलिए मारता है, इस भय से मारता है कि कहीं वह खुद न मारा जाए। कितना डरपोक है सैनिक. . और हर देश वीरगति को प्राप्त हुए अपने सैनिकों को अमर शहीद की संज्ञा से विभूषित करता है.... स्वार्थी समाज. . उन्हें आग में धकेल देता है।'

'सैनिक मिसिंग भी हो जाते हैं. . और उनके माँ-बाप ताउम्र आस लगाए बैठे रहते हैं, कि वे पुराण कथाओं के पात्रों-से कभी न कभी फिर प्रकट हो जाएँगे।'

शांति नहीं जानती मिसिंग क्या होता है. . कुछ अनिष्ट. . कष्टकारक होता होगा। उसके कानों में तो यही ध्वनि गूँज रही थी - मैं बुधवार सायं सात बजे फोन करूँगा, माँ.... फोन नहीं आना था, और नहीं ही आया।

स्वामी की चेतना तो मिसिंग में फँसी थी। दिल्ली का वह वृद्ध उसकी साँसों में अटक गया था, जिसका बेटा सन् १९७१ के युद्ध में मिसिंग हो गया था। बूढ़ा बाप अब भी यहाँ-वहाँ पत्र लिखता था कि शायद कहीं से उसकी खबर मिल जाए. . अन्ततः उसकी साधना सफल हुई थी। पता चला कि वह शत्रु की जेल में अभी भी बंदी है. . तीस वर्ष का अन्तराल। यह वास्तव में वृद्ध के लिए दूसरी यातना की शुरुआत थी. . किस से गुहार करे.... अपनी सरकार ने कहा - हम पता लगवा रहे हैं. . मीडिया ने कहा - हाँ, वह पाक जेल में देखा गया है लेकिन पाक ने साफ इंकार कर दिया कि कोई १९७१ का युद्ध-बंदी उनकी जेल में है. . शब्दों की चपेट में वृद्ध पिता का बेटा फिर खो गया था।

'यह क्या कर रहे हो? पागल हो गए हो क्या?' शांति ने कहा।

स्वामी ने सिगरेट सुलगा रखी थी और उसे अपने गालों पर लगा रहा था। जगह-जगह लगा कर देख रहा था कि बट-एंड से जलाने पर कितना कष्ट होता है। वह स्वयं कैदी बन गया था. .और शत्रु के बन्दी-गृह में यातना सहन करने की अनुभूति क्या होती है, इसे परख रहा था. .वह क्षणभर के लिए निखिल बन गया था।

निखिल ने डॉक्टर बनना था। मेडिकल में प्रवेश के लिए प्रतियोगी परीक्षा का अभी परिणाम नहीं निकला था। उससे पहले ही उसका चयन एन.डी.ए. के लिए हो गया था। वह अपनी सफलता से अभिभूत था।

स्वामी ने कहा भी था. .परिणाम की प्रतीक्षा तो कर लो।

'पापा, आप जानते ही हैं कि प्रतियोगी-परीक्षाएँ कितनी कठिन होती हैं. .और फिर आजकल नौकरी मिलती ही कहाँ है। जो फिर हाथ में है, उसे क्यों गँवाना। आर्मी में तो ठाठ ही ठाठ हैं। आप क्यों डरते हो। गत तीस वर्ष में जो लोग आर्मी में गए, वे तो बिना कोई युद्ध देखे ही रिटायर भी हो गए. .बाकी भाग्य की बात।'

फिर बोला था - आप को तो खुश होना चाहिए. .कि बिना सिफारिश, बिना कुछ लिए-दिए बी.एस.सी. करते ही मैं कमीशंड-अफसर बन सकता हूँ। यह आपका ही आशीर्वाद है।

स्वामी के मन-मस्तिष्क में बिहारी कौंध गया। उसका चचेरा भाई। कलकत्ता में पढ़ने गया था. .और हो गया सुभाषचन्द्र की फौज में भर्ती। सन् १९४५-४६ में ऐसा मिसिंग हुआ कि आज तक कोई अता-पता नहीं। उसकी अंतिम चिट्ठी जापान से आई थी. .।

कमीशंड होने के बाद निखिल बस एक बार घर आया था। सीमा पर बवण्डर मच गया था। ज़लज़ले पर ज़लज़ले आ रहे थे। और सब तरफ दहशत व्याप्त गई थी।

फोन की घंटी बज रही थी लेकिन स्वामी का साहस जवाब दे गया था. .उसने फोन नहीं उठाया। शांति निस्तेज-सी उसके आस-पास मण्डरा रही थी।

वह तेज़ धार छुरी ले कर एक कोने में ख ा कुछ काट रहा था।

शांति को संशय हुआ। वह दौ ी-दौ ी उसके पास पहुँची। बोली सारे गाल जला लिए। अब क्या गुल खिला रहे हो? अरे, छो ो-छो ो. .यह छुरी से क्या कर रहे हो? तभी उसने देखा स्वामी की एक उँगली लटक गई थी. .फर्श पर खून की धारा फैल गई थी।

स्वामी ने आँखें मिचमिचाते हुए ताबूत में झाँककर देखा. .नाक, कान, आँख, जिह्वा.. सब कुछ नदारद. .निखिल ऐसा तो नहीं था। उसकी आँखों के आगे काला-स्याह अन्धकार छा गया. .उसने नमन किया. .भी जयजयकार कर रही थी. .

उसके नथुनों से सरकारी पैट्रोल की गन्ध चिपक गयी। ज़लज़ला निकल चुका था।

***

सुपात्र

स्नेह ठाकुर

सौहार्द्रता, क्षमा क्या यह एक तरफा है?
क्या नहीं होना चाहिए इसमें दोनों का सहयोग, सहमति?
सद्भावना, सौहार्द्रता, क्षमा बहुत ही उच्च गुण हैं
पर क्या इनकी कभी कोई सीमा नहीं?
क्या यह पात्र-कुपात्र दोनो के लिए समदर्शी हो?
क्या मार खाते रहना और क्षमा करते रहना
अन्याय पे अन्याय सहना कायरता के दायरे में ही तो
बँधे रहने की श्रेणी में नहीं आता?

एक हाथ से ताली बजती नहीं
दूसरा गाल सामने करने से बात बनती नहीं
कहीं न कहीं सीमा तो बाँधनी ही प ेगी
खलबला उठे थे द्वापर में कृष्ण भी
आतंकों की स्मृति-पटल पर ज ी स्मृतियाँ तो छो ही दीजिए
नानी-दादी द्वारा सुनाईं विभीषक चर्चाएँ तो दूर की बात
ये तो हैं हाल ही की आँखों देखी विभीषिकाएँ
सूख नहीं पाए धब्बे लहू के छिटके हुए शरीर पर
न हुईं अभी चीत्कारें शांत अभागे क्षत-विक्षत शरीरों की
सूखे नहीं हैं खून के फव्वारे अभी
अन्त्येष्टि क्रिया भी न कर पाए हम अभी
जीवित रगों का खौलता खून ठंडा नहीं हुआ अभी
कि तुम बात करने लगे सौहार्द्रता की !
हाँ हम हिन्दू हैं
सौहार्द्र, क्षमाशील, सद्भावी हैं
पर बेवकूफ, कायर नहीं
हाथ मिलाने के लिए हम हरदम अग्रगणी हैं
पर उन्हीं हाथों को जो पेशावर हत्यारे नहीं
अंकवार करने से हमने मना किया नहीं कभी
पर पीठ में छुरा भोंकने वालों की पहचान है अभी
उनके कंधों से कंधा मिलाकर चलेंगे हम तभी
जब वो क्षमाशीलता, सौहार्द्रता, सद्भावना का कद्रदान हो स्वयं भी

रावण-दहन (लघु कथा) सूर्यकांत नागर

दशहरे के अवसर पर रावण-दहन का कार्यक्रम कालोनी के सार्वजनिक मैदान पर आयोजित था। मोहल्ला कमेटी ने तय किया था कि नेताजी को तो आमंत्रित किया ही जाए; रावण-दहन इस बार कालोनी के ही एक प्रतिभशाली किशोर से कराया जाए। नियत दिवस पर भारी भी और शानदार आतिशबाज़ी के बीच नेताजी ने बुराई के प्रतीक रावण को जलाने का आवाहन किया और खूब तालियाँ पिटवाईं। अन्ततः तेरह-वर्षीय किशोर को लेकर सब रावण के पुतले के पास पहुँचे। आयोजकों ने ल के से रावण को जलाने के लिए कहा। ल का कुछ देर असमंजस में ख ा रहा! उसने एक बार रावण के पुतले को देखा और फिर पास में ख े थुलथुल नेताजी को। फिर आयोजकों से पूछा, 'यह तो बता दें जलाना किसे है?'

प्यार क्या है?

डॉ. अम्बाशंकर नागर

पूछते हो, 'प्यार क्या है?'
प्रश्न ऐसा है तुम्हारा,
पूर्ति जिसकी है न संभव.
प्यार को वाणी कहे,
यह तो असंभव है असंभव.

प्यार रहता है हृदय के
कोश में संचित, सुरक्षित,
और उसके मर्म से जब
स्वयं प्रेमी भी अपरिचित.
तब भला अनुमान से ही
कह सके सारी हक़ीक़त.
अन्य की सामर्थ्य क्या है !
पूछते हो, 'प्यार क्या है?'

यह अनाहत नाद-सा बजता हृदय में,
यह मधुर अह्लाद-सा सजता हृदय में.
यह कसक बनकर कसकता है सदा,

दैव का वरदान है या आपदा !

प्यार को अभिशाप भी
कहते सुना है प्रेमियों को.
प्यार को वरदान भी
कहते सुना हैं प्रेमियों को.
पूछना चाहो तो पूछो -
इन अढ़ाई-अक्षरों में
इतना विरोधाभास क्या है?
पूछते हो, 'प्यार क्या है?'

*

जिसे प्यार करते हो किये जाओ

डॉ. अम्बाशंकर नागर

जिसे प्यार करते हो
किये जाओ,
प्यार की बात
न होंठों पर लाओ.

बादल की तरह
छाये रहो,
उम ो-घुम ो,
यह न हो कि तुम
यूँ ही बरस जाओ. जिसे...

प्यार को
वाणी की दरकार नहीं,
प्यार को शब्दों से
सरोकार नहीं,
मौन ही
प्यार की वाणी, भाषा.
फिर भला
व्यर्थ क्यों बके जाओ. जिसे...

प्यार -
दो साजों की
जुगलबंदी है,
जिसमें हर तार
मिल के बजता है,
बेसुरे तारों की खूँटियाँ खींचो
जो बेमेल हों, मिलाते जाओ.
जिसे...

*

टी. एस. इलियट की निम्नलिखित पंक्तियाँ, संपादक डॉ. अम्बाशंकर नागर की लेखनी से; (भाषा-सेतु सम्पादकीय से साभार):

कहाँ है वह जीवन
जिसे खो दिया है हमने केवल जीवित रहने में?
कहाँ है वह बुद्धिमत्ता,
जिसे खो दिया है हमने ज्ञानोपार्जन में?
कहाँ है वह ज्ञान,
जिसे खो दिया है हमने जानकारी प्राप्त करने में?
संस्कृति के बीस कालचक्र
हमें दूर ले गए हैं परमात्मा से
और निकट ले आए हैं सर्वनाश के !

****

वट वृक्ष

डॉ. सरला अग्रवाल

पंखा निरन्तर तीव्रतम गति से चल रहा था फिर भी नंदिता पूरी तरह पसीने में भीग गई। सा ी के पल्लू से हाथ-मुँह पोंछते हुए वह ह ब ाकर उठ बैठी। "उफ कितनी गर्मी है आज" उसके मुख से निकल प ा।

नाइट लैंप के मध्यम प्रकाश में हठात् उसकी निगाहें दीवार-घ ी पर प ीं। कुल ग्यारह बजकर सोलह मिनट ही हुए थे, पर उसे लगा कि उसकी नींद पूरी हो चुकी है..। आज शाम को वह घर आते ही सो गई थी.. इससे पूर्व की रात्रि उसकी ट्रेन के सफर में जागते हुए बीती थी..और दिन तो मेडिकल कॉन्फ्रेंस की गतिविधियों में तथा उसके पश्चात् अन्य डॉक्टर्स के साथ शॉपिंग और साइट-सीइंग में बीता था..घर पहुँचते-पहुँचते पूरी तरह से थक चुकी थी वह..चाय पीते ही गहरी नींद में सो गई।

तभी उसके कानों में संगीत की तीव्र ध्वनि के साथ जोर-जोर से हँसी-ठहाकों के स्वर टकराने लगे। पलंग से उठकर उसने कमरे की खि की का पर्दा तनिक-सा सावधानीपूर्वक खिसका कर बाहर की ओर नेत्र ग ाए.. लॉन में जगमगाती रोशनियों के बीच काफी लोग जमा थे..सजे-धजे..हाथों में काँच के ग्लास पक े..संभवतः सुरापान के दौर चल रहे थे। लॉन के बीचों-बीच चमचमाते श्वेत मार्बल के चबूतरे पर कई जो े कमर में हाथ डाले, सटे-सटे अँग्रेजी संगीत की मदहोश कर देने वाली सुपर-फास्ट धुन पर नृत्यरत थे। चारों ओर रंगबिरंगे बल्बों की रोशनियाँ जगमगा रही थीं और अनेक कूलर और पेडेस्टल पंखों ने उस बारादरी एवं वातावरण को शीतल कर रखा था। एक ओर साइड में कई लम्बी मेजें पास-पास लगाकर श्वेत चादरें बिछाई गई थीं, जिनके ऊपर सुंदर क्राकरी और खाने का सामान सजा था। बैरे श्वेत ड्रेस में स्मार्टली ड्रेसड्, मुस्तैदी से हाथ में ट्रे लिए घूम रहे थे और अधभरे ग्लासों को अनुरोधपूर्वक भर रहे थे। अमिताभ भइया और भाभी भी दूसरे स्त्री-पुरुष को अपना-अपना जो ा बनाकर मुख पर खिलती मुस्कान लिए नृत्य करते थिरक रहे थे।

मेज़ों पर सजा खाने का सरंजाम देखकर उसके पेट में चूहे कूदने लगे, उसे ध्यान आया कि उसने रात्रि का भोजन अभी किया ही कहाँ है! कल रात तो वह जल्दी ही सो गई थी..उसने अपने पास वाले पलंग पर देखा तो चाचीजी आराम से गहरी नींद में सोई हुई थीं। चाचाजी कमरे में नहीं थे। अब वह अपने खाने की बात किससे कहे?

चाचा-चाचीजी का कमरा तो वैसे भी कोठी के एकदम ही पिछवा े बने आउट-हाउस में है। वहाँ से कोठी के अंदर के किचन में प्रवेश पाने के लिए एक गैलरी से होकर जाया जा सकता है, पर उसका द्वार अक्सर ही बंद रहता है। या फिर सामने के लॉन से होकर भी किचन में जा सकते हैं, पर इस समय तो..सोचती हुई नंदिता साहस बटोर कर गैलरी की ओर चल दी।

गैलरी का द्वार अंदर से बंद था पर उसके साथ वाले कमरे की खुली खि की से नीम अँधेरे में उसे दो आकृतियाँ आलिंगनबद्ध दिखाई दीं..वह घबराकर वापस लौट प ी.... अपनी अशिष्टता पर उसका हृदय ध कने लगा पर साथ ही आश्चर्य भी हुआ कि इस समय जब आगत अतिथि एवं मेजबान सब बाहर लॉन में आमोद-प्रमोद में व्यस्त हैं, तब कोठी के शयनकक्ष में कौन हो सकता है? उसे विशाल की याद हो आई..वह तो वहाँ लॉन में उसे दिखाई नहीं दिया था..फिर यह कमरा भी तो उसी का है! मन में उपजे अपने विचारों को उसने छिटक दिया..अपनी जिज्ञासा को दबाए उसे आज की इस भोगवादी संस्कृति के प्रति वितृष्णा हो आई। आज का युवावर्ग किस ओर भटक रहा है? वह जीवन में क्या पाना

चाहता है? उसके जीवन का उद्देश्य क्या है? वह यह सब सोच ही रही थी कि उसके साथ-साथ चाचाजी भी कमरे में आ गए।

"अरे तू उठ गई बिटिया! आज शाम तो तू बहुत जल्दी सो गई? तूने तो वहाँ से आकर कुछ भी नहीं खाया था, अब तो तुझे ब ी जोर की भूख लगी होगी? अच्छा देखता हूँ कुछ.."

"आपने और चाचीजी ने खाना खा लिया क्या?" नंदिता ने उनसे पूछा।

"हाँ..आँ..खा लेंगे हम भी..अभी बना ही कहाँ होगा? घण्टे भर बाद सर्व होगा.... तब नम्बर आएगा हमारा..अभी तो पीने-पाने के दौर ही चल रहे हैं वहाँ पर। आज गर्मी बहुत है, है न? मैं तो तनिक घूमने निकल गया था। मैं तो सुबह से ही तेरे साथ बातें करने की बाट जोहता रहा था, सुबह भी आते ही कॉन्फ्रेंस के लिए चल दी थी..ब ी याद आती है तेरी तो हमें बिटिया।"

चाचाजी के स्नेहसिक्त स्वर की हल्की मधुर फुहार ने उसे अंदर तक भिगो दिया, कितना ख्याल रखते हैं वो सदैव ही उसका। जब से वह डॉक्टर बनी है सदैव 'मैडम' या 'डॉक्टर साहब' के संबोधनों से ही तो पुकारी जाती रही है..'बिटिया' जैसा प्यारभरा संबोधन देने वाले तो केवल उसके ये चाचा-चाचीजी ही तो हैं जो उसे इतना स्नेह और अपनत्व देते आए हैं।

इसका अर्थ यह हुआ कि चाचीजी बेचारी भी भूखी ही सो गई होंगी। उसे अमिताभ भइया और जैनी भाभी की लापरवाही पर मन ही मन बेहद रोष और दुख हो आया। पर क्या करती? अपना घर होता तो वह दौ कर स्वयं ही उनके लिए गरमागरम परांठे सेंक कर ले आती।

चार बरस की ही तो थी वह, जब उसके मम्मी-डैडी एक प्लेन-क्रैश में चल बसे थे....तब से चाचा-चाची के पास ही रही है वह।

नन्दिता को अपना बचपन याद आने लगा..कितने सुहाने थे वे दिन.. अमिताभ भइया, मुक्ता और वह तीनों मिलकर कितना हुडदंग मचाया करते थे। कभी छिपम-छिपाई खेलते, कभी कैरम तो कभी फाइव स्टोन। चाचीजी उन्हें देखकर मुस्कुरातीं रहतीं..कभी अमरूद काटकर खिलातीं तो कभी संतरे छील-छीलकर देतीं, कभी चावल के पाप और घर में बनाए हुए आलू के चिप्स तल कर लातीं..और वे तीनों खेल की धुन में जल्दी-जल्दी कुछ मुँह में हब्शियों की भाँति भरकर भाग लेते..वो आवाज़े देती रह जातीं..उन्होंने कभी अपने बच्चों और उसके साथ 'दुभांति' नहीं की।

होमवर्क कराने बैठातीं तो तीनों को ही आवाज़े लगातीं। भइया उन दोनों से काफी ब े थे पर वह भी उनके साथ ही पढ़ने के लिए बिठाए जाते..कितना बोलते थे वे तीनो .... बातें कभी खत्म होने का नाम ही नहीं लेती थीं..चाचीजी उन्हें सज़ा देकर अलग-अलग कोने में बिठा देतीं..."अब दो घंटे तक मौन व्रत चलेगा तुम तीनों का समझे, जो भी बोलेगा एक चाँटा खाएगा और एक शब्द के लिए एक आना फाइन"

चाचीजी बीचों-बीच पलंग पर डटी रहतीं। केवल 'कठिनाई' पूछने के लिए उन्हें चाचीजी के पास जाना होता, और वे पूछकर वापस अपनी जगह पर आ जाते, जब तक कि होमवर्क पूरा न होता। काफी सख्ती बरतने के बावजूद एक न एक जना बोल ही प ता। कितना मज़ा आता था तब..हँसते-हँसते पेट में बल प जाते थे..साथ में चाचीजी भी हँसतीं..डाँटती जातीं और हँसती जातीं। कितना स्नेह मिला था नंदिता को इस घर में.... याद करके उसकी आँखें नम हो आईं।

यह चाचाजी और चाचीजी की साधना और तपस्या ही तो थी जिसने बच्चों को ला -दुलार के साथ-साथ ऐसे अनुशासन में भी बाँधे रखा कि आज वे तीनों ही अपने-अपने कैरियर के शीर्ष पर हैं।

भइया ने तो इतनी तरक्की की है कि आज वो इस सम्पूर्ण प्रदेश के चीफ इंजीनियर हैं। मुक्ता अपने अँग्रेजी पत्र की एकछत्र स्वामिनी बनी हुई है और वह स्वयं भी एम.एस. करके अपना स्वयं का मैटरनिटी-होम चला रही है, नन्दिता ने सोचा।

चाचाजी ने सदैव ईमानदारी का पवित्र जीवन जिया। वह एक प्राइवेट कंपनी में सीनियर अफसर रहे..अच्छा कमाया, अच्छा खाया..। जो भी अतिथि घर में आते उनकी ऐसी आवभगत करते कि उसका इस घर से जाने का मन ही न होता। तीनों बच्चों को बढ़िया खिलाया-पिलाया और खूब बढ़िया शिक्षा दी..पैरों पर ख ा किया। तभी तो वह अपने जीवन में इतनी प्रसन्न और संतुष्ट रही है।

अपने विचारों में डुबी नंदिता भूल चुकी थी कि वह कहाँ बैठी है..उसकी तन्द्रा तेज चलते तर्क-वितर्क एवं अशिष्ट शब्दों के ऊँचे स्वर से टूटी..।

"पापा, कितनी बार समझा दिया आपको कि जब घर में गेस्ट आएँ हों, पार्टी चल रही हो तो आप उधर न आया करें..बिना बनियान के इस मैले-से कुर्ते-पायजामें में वहाँ घूम रहे हैं? क्या काम था वहाँ भला आपको इस समय? आखिर क्या चाहते आप हैं? शहर के ब ़े-ब ़े उद्योगपति और सीनियर अफसर मौजूद हैं..एम.पी. भी आए हुए हैं. अपनी स ी शक्ल सबको दिखानी जरूरी है?" अमिताभ भइया के विष बुझे तीरों के समक्ष चाचाजी लज्जित और अपमानित-से ख ़े थे।

"डैडी, आप इन लोगों को 'ओल्ड ऐज होम' में भेज दीजिए न? मैं तो कब से कह रहा हूँ आपको..रोज-रोज की इन्टरफियरेंस खत्म हो जाएगी। उस दिन मम्मा की फ्रेन्ड्स आई थीं, तो ये महारानीजी अपनी स ी-सी मैली धोती में, बाल बिखेरे वहाँ चाय की ट्रे लेकर पहुँच गईं, मम्मा से तमगा लेने, बेचारी मम्मा तो शर्म से पानी-पानी हो गईं..इन्हें घर की मेड-सर्वेन्ट बताना प ा उन्हें, क्या करतीं?" भइया का युवा पुत्र विशाल जोर-जोर से चींख रहा था।

"अरे! हमारी न सही नंदिता की तो फिक्र करो..बेचारी यहाँ रात के बारह बजे तक भूखी बैठी है..मैं तो रसोई में जाकर शंभू को खाना यहीं ले आने के लिए कहने जा रहा था..पर.." दोनों हाथों को मलते..दबे स्वर में चाचाजी का भयभीत-सा शिष्ट स्वर निकला था..मन ही मन अपमान के घूँट भरते, क्षोभ से व्याकुल चाचाजी की आँखों से (उसके समक्ष) आँसू झरने लगे।

"हाँ, कोई तो बहाना चाहिए न आपको वहाँ आकर देखने के लिए कि हम लोग क्या कर रहे हैं..आप बूढ़े लोग चाहते हैं कि नई जेनरेशन आपकी तरह ही घर में बैठी रोती-झींकती रहे..तनिक नाच-गा लिया, किसी से हँस-बोल लिया, तो माथे पर सलवटें प जाती हैं।" धीरे-धीरे ब ब ाते अमिताभ भइया और विशाल तेजी से पलट कर चल दिए।

इतने शोर से चाचीजी जाग गईं। "अब आप कुछ मत बोलिए, जो है सो है..आपके चाहने से स्थितियाँ बदलने वाली नहीं हैं. आप अपना ज़माना भूल जाईए..यहाँ रहना है तो स्थितियों से समझौता करके ही रहना होगा.." चाचीजी उन्हें समझाने लगीं।

"अरे! पहले से बता देते कि आज उन्होंने घर में पार्टी रखी है और हम लोगों के लिए पहले से ही कुछ बनवा देते..तो मुझे वहाँ क्यों जाना प ता इस समय..? अब रसोई में जाने भर के लिए क्या मैं सूट-बूट पहनूँगा? कम से कम गैलरी का दरवाजा तो खुलवा

कर रखा जा सकता था कि हम लोग रसोईघर में जा सके... पर इनका कोई काम प्लैंड हो तब न? बेटा, मुझे तो तेरी फिक्र है...।" उन्होंने नंदिता की ओर देखते हुए कहा।

"हमारा न सही कम से कम ये तेरा तो ख्याल कर लेते...अरे, तुम अपने को ब ा अफलातून समझते हो तो नन्दिता भी कोई कम नहीं, वह भी सीनियर डॉक्टर है...उसकी भी समाज में पोजीशन है। बेटी, अब तो वैभव और प्रदर्शन की आँधी में आत्मीयता उ ही गई है। इस उत्तर आधुनिकता के चक्रवात ने मनुष्य के संयम के बाँध को पूरी तरह उखा फेंका है।

सर्विस तो हमने भी जीवन भर की है...पर रिश्वत, घूँस, औरत, शराब, ड्रग्स जैसी नशीली चीजों से सदा ही दूर रहे...जब ये खुद ही इनमें डुबे रहेंगे तो इनके बच्चे क्या इन सबसे दूर रह पाएँगे...अरे! उसके शरीर में तो ये नशीली वस्तुएँ अब पूरी तरह से घर कर चुकीं हैं...मुझे सब मालूम है. रोज़ ल की लिए घूमता है, डिस्को जाता है और बाप को कहता है इन्हें 'ओल्ड ऐज होम' भेज दो..., ताकि हम इसकी ऐय्याशियों की शिकायत न कर सकें। कल यही ल का अपने माँ-बाप को ओल्ड ऐज होम भेजेगा, देख लेना तुम...।" चाचाजी ने अपने दोनों हाथों में सिर ले लिया और कुछ देर तक चुपचाप बैठे रहे, मानों उनकी सारी शक्ति चुक गई हो...और, बोलने के लिए वो ऊर्जा जुटा रहे हों...कितना कुछ जमा होगा उनके टूटे हुए हृदय की एक-एक किरच में, यह नन्दिता भलीभाँति समझ पा रही थी।

"उफ! कितनी घुटन और उमस है इस कमरे में! कैसे बैठे रहें पूरे समय हम लोग, एक जगह यहाँ पर... इस छोटी-सी कोठरी में? हमने तो अपने माता-पिता, दादा-दादी सभी को इतना आदर, मान-सम्मान दिया था...कितनी मिठास थी हमारे रिश्तों में! उनके प्यार और आशिर्वाद ही तो हमारे संबल थे...सफलता के आधार थे. कभी सिर उठाकर ऊँची आवाज़ में नहीं बोले किसी ब े-बुज़ुर्ग से...पर आज की पीढ़ी? न कोई अनुशासन, न आत्मीयता और ना ही शालीनता! क्या हो गया है इनको? अरे, जेनरेशन गैप कब नहीं था? पर ये लोग जेनरेशन गैप को रक्षा-कवच बना कर जीते हैं। हाँ, अभी तो ये भोग-विलास में डूबे हैं...पर एक दिन ऐसा ज़रूर आएगा जब इनके बच्चे इन्हें इसकी सजा देंगे।"

"ओहो! क्या हो गया है आपको? कम से कम अपने बच्चों को शाप तो न दीजिए.... हमारी किस्मत हमारे साथ है, इनकी इनके साथ...आप क्यों अपना मन खराब करते हैं?" चाचीजी व्यथित हो उठीं थीं।

"तुम इसे शाप कह रही हो? नहीं, यह एक व्यथित बाप की अन्तरआत्मा की करुण पुकार है। माँ-बाप कभी अपने बच्चों को शाप नहीं देते, पर गलत मार्ग पर जाते देखकर रोकते अवश्य हैं...उन्हें आने वाले खतरों से सावधान करते हैं।"

नंदिता का मन अतीत की ओर पलट चला...चाचाजी की बातों ने उसे कई भूली-बिसरी बातें याद दिला दीं...चाचाजी का तो आरम्भ से ही भारतीय संस्कृति और जीवन मूल्यों में अटूट विश्वास रहा था। उसके तहत अपने तीनों बच्चों को उन्होंने अत्यन्त निष्ठा के साथ पूर्णतः भारतीय परिवेश में पाला-पोसा था...पर फिर भी अपने पुत्र अमिताभ एवं पुत्री मुक्ता को वे आज की अपसंस्कृति की आँधी से क्यों नहीं बचा पाए?

चार बरस की ही तो थी वह, तब से चाचाजी और चाचीजी ने ही तो अपने वात्सल्य का जल डालकर उस नन्हें पौधे को सींचा था...अपनी स्नेहिल छत्र-छाया का संबल देकर उसे पाला-पोसा, पढ़ाया-लिखाया, पैरों पर ख ा करके एक सुयोग्य वर के साथ पवित्र गठबन्धन में बाँधा। सबसे अधिक चाचाजी का सान्निध्य भी उसी को प्राप्त हुआ।

अमिताभ भइया तो आरंभ से ही होस्टल में रहकर पढ़े थे, फिर उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए अमेरिका चले गए..पाँच लम्बे वर्षों के पश्चात जब वे वापस भारत आए तो अपने साथ माता-पिता के लिए अमेरिकन-तोहफा, वधू और पौत्र, साथ लेकर आए..चाची के वर्षों से सजाए स्वप्नों और अरमानों का गला उन्होंनें उसी समय घोंट दिया था, तब भी पृथ्वी-सदृश सहनशीला चाची ने अपने अंतर के दर्द को अपने तक ही रखा, एक शब्द भी विरोध का बाहर नहीं आने दिया..संयुक्त परिवार में रहकर उन्हें संयुक्त परिवार की गरिमा बनाए रखने के गुर आते थे।

और मुक्ता! एक बार वह अपने डॉक्टर पति नमित के साथ एक मेडिकल कॉन्फ्रेन्स में भाग लेने मुंबई गई थी, तब मुक्ता मुंबई के एक ब` अँग्रेज़ी व्यवसायिक दैनिक समाचार-पत्र की सब-एडीटर थी। उसे कंपनी की ओर से कई सुविधाएँ प्राप्त थीं। अपनी कॉन्फ्रेंस से निबट कर उन दोनों ने मुक्ता से मिलने का विचार बनाया। वे उसे फोन से सूचना देना चाहते थे किन्तु संयोगवश फोन नम्बर ले जाना भूल ही गए थे। "जर्नलिस्ट है मुक्ता, मालूम नहीं घर पर मिलेगी भी या नहीं।" नंदिता ने नमित से कहा था।

"नंदू, रात के आठ बज रहे हैं, वहाँ पहुँचने में भी कुछ समय तो लगेगा ही, तब तक तो वह आफिस से आ ही जाएगी।"

"अरे भई जर्नलिस्ट लोग, विशेषरूप से संपादक तो रात्रि में ही काम करते हैं..रात को ही तो उनका दैनिक-पत्र छपता है।"

"चलो एक चांस ले ही लेते हैं, सुबह की ट्रेन से तो हमें निकलना ही है, हमारी सरप्राइज़ विज़िट से वह खुश ही होगी, क्योंकि यदि बाद में उसे मालूम हुआ कि हम उससे बिना मिले ही वापस चले गए हैं तो साली साहिबा नाराज हो जाएँगी, देख लो, रिस्क इज़ योर्स।" नमित ने नंदिता को छे ते हुए कहा।

संयोगवश मुक्ता उन्हें उस दिन घर पर ही मिल गई थी। बातों ही बातों में मुक्ता के एकाकीपन के लिए सहानुभूति दर्शाते हुए नंदिता ने उससे कहा था, "अरे मुक्ता तुम यहाँ अकेली रहती हो? इससे अच्छा तो यह रहेगा कि तुम चाचाजी-चाचीजी को अपने पास बुला लो, तुम्हारा मन भी लगा रहेगा और अकेलापन भी महसूस नहीं होगा तुम्हें, उनका भी कुछ चेंज हो जाएगा।" मन ही मन अपने इस आइडिया पर वह स्वयं ही मुग्ध हो उठी, पर मुक्ता ने कुछ चिढ़कर प्रति-उत्तर में प्रश्न दाग दिया, "वह तो ठीक है नंदू..पर मैं अकेली कहाँ हूँ?"

"मतलब?"

"मेरे साथ संदीप है, मेरा लाइफ-पार्टनर। हम दोनों साथ ही रहते हैं यहाँ इस फ्लैट में। वह मेरे साथ मेरे आफिस में ही काम करता है। हम दोनों की ट्यूनिंग बहत अच्छी है आपस में। बैसे भी टूरिंग जाब है..अक्सर बाहर रहती हूँ..मम्मी-पापा का कहाँ मन लगने वाला है यहाँ पर।" वह काफी प्रसन्न दिखाई दे रही थी।

"तुमने विवाह कर लिया है क्या?"

"ओह नंदू! डोन्ट बी सो सिली! आज शादी, कल बच्चे! परसों तलाक! तब तो हो लिया जर्नलिज़्म! आज़ादी का जमाना है यार! अब छो भी इस बकवास को, कुछ अपनी सुना..क्या कर रही है?"

कई वर्ष बीत चुके उस बात को..नंदिता को आश्चर्य हुआ था कि आज की जीवन-शैली में क्या वृद्ध माता-पिता के लिए कोई भी स्थान नहीं है। पहले भी तो सब एक साथ हिल-मिलकर प्रेमपूर्वक रहते थे।

नंदिता को ध्यान आया कि इतने वर्ष हो गए अभी तक भी उसके पास मुक्ता के विवाह का निमंत्रणपत्र नहीं आया.. तो क्या वह अभी तक अपने उसी बॉय-फ्रेंड के साथ बिना विवाह किए रह रही है? या फ्रेंड बदल चुका हो..कौन जाने! चाचाजी से तो वह चाहकर भी यह बात पूछ नहीं पाएगी, उसके इस प्रश्न से उनके संस्कारित मन को न जाने कितनी ठेस लगेगी? अभी तक उसने चाचाजी या चाचीजी से कभी सिर उठाकर बात कर पाने तक की हिम्मत नहीं की..उन्होंने संकेत में भी जो कहा उस निर्देश का पालन वह प्राणप्रण से करती आई है। उससे आज तक उन्होंने मुक्ता के विषय में कोई बात नहीं की, यही दर्शाता है कि उनका मन उसकी ओर से कितना क वा हो चुका है। हाँ, उसे याद आया, पिछले वर्ष मुक्ता की सहकर्मी उसे मिली थी तब उसने बताया था कि बेहद शराब पीने लगी है वह। कई दोस्त बदल चुकी है, अब एकदम अकेली प गई है..।

और विशाल! आज किस प्रकार सीना तान कर चाचाजी से अशिष्टतापूर्वक बोल रहा था..जिन पौधों को कल चाचाजी-चाचीजी ने अपने हाथों से रोंपा था वही आज वृक्ष बनने पर रास्ते के सामने गिर कर रास्ता रोक रहे हैं उनका..बचपन से ही चाचीजी ने विशाल को अपना ममत्व देकर पाला था..जैनी भाभी तो अमेरिकन एम्बैसी में कार्य करती थीं.... चाचीजी ही उसकी मालिश करतीं, नहलातीं-धुलातीं, उसके साथ खेलतीं-खिलातीं। कितने श्रम से उन्होंने इसकी देखभाल की थी आरम्भ से ही..पर वही पोता आज उनके साथ किस प्रकार का व्यवहार कर रहा है? नंदिता का मन भर आया।

जब यह कोठी बन रही थी तब भइया ने चाचाजी की ही तो मदद ली थी। रात-दिन धूप, वर्षा, सर्दी-गर्मी में राज-मजदूरों के सिर पर ख ा होकर कितनी भाग-दौ करके उनकी यह कोठी चाचाजी ने बनवाई थी। वह तभी सर्विस से सेवानिवृत हुए थे अतः अपना समस्त समय उन्होंने इस कोठी पर व्यय कर दिया था। चाचाजी का स्वयं का बनवाया हुआ छोटा-सा प्यारा-सा मकान था, उसे भइया ने जिद करके बिकवा दिया था कि अब सब लोग इस कोठी में साथ ही रहेंगे। तब विशाल भी तो छोटा ही था..चाचीजी उसे रखतीं और चाचाजी मजदूरों को देखते, सामान आादि लाने-मँगाने की व्यवस्था करते। अपनी ग्रेच्यूटी-प्राविडेन्ट फण्ड आदि भी चाचाजी ने उत्साह में आकर सब इस कोठी पर समर्पित कर दिए थे..और भइया ने आज उन्हें ही इस आलीशान कोठी के पिछवा ा की घुटन भरी कोठरी में पटक रखा है जहाँ वह अब अपने जीवन के अंतिम वर्ष काटने के लिए विवश हैं..।

नंदिता को लगा कि जैसे दीमक लक ी को शनैः-शनैः खोखला कर देती है उसी तरह तो चाचाजी को यह विपरीत अनचाही परिस्थितियाँ खोखला करती जा रहीं हैं। एक समय ऐसा था जब इन्हीं चाचाजी के मुख से निकली एक-एक बात पत्थर की लकीर मानी जाती थी। कैसा दबदबा था परिवार में इनका। जीवन इतना अनुशासित था कि हर कार्य एकदम निश्चित समय पर होता था..हर व्यक्ति इनका आदर करता था..और अब उन्हें कैसी अवहेलना सहनी प रही है, अपनों की ही। नंदिता से इस परिवार की डगमगाती नींव देखी नहीं जा रही थी..जिस वट वृक्ष की छाया में पल-बढ़ कर उसने बोलना और चलना सीखा था, वही अब अपने रोपे पौधों के समक्ष विवश ख ा है? वह व्यथित हो उठी।

उसने सुबह होने से पूर्व ही अपना सामान पैक कर लिया..एक और निर्णय उसने मन ही मन ले लिया, जिसकी अनुमति चाचाजी और चाचीजी से ले ली..भइया-भाभी को भी उसने बता दिया कि वह चाचाजी और चाचीजी को अपने साथ ले जा रही है। कोई एक शब्द भी नहीं बोला।

नंदिता तो कब से ऐसी स्नेहिल छाँव के लिए तरसती रही थी. .उसे सास-ससुर की सेवा करने का सौभाग्य भी नहीं प्राप्त हुआ था। पति नमित की ओर से वह निश्चिन्त थी... वह तो पहले ही कई बार उसे चाचा-चाची को अपने पास बुलाने के लिए कह ही चुके थे। उन्हें विदित था कि उनकी पत्नी नंदिता पर उनका सदा ही मातृ-पितृवत स्नेह रहा है, और बच्चे! वे तो अपने माता-पिता का रुख देखकर स्वयं ही ढ़ल जाते हैं।

चाचा और चाचीजी को नंदिता के साथ आया देखकर नमित एवं संजय, सुष्मिता तीनों ही अनुपम प्रसन्नता से पुलकित हो उठे। सबने उनका हार्दिक स्वागत किया। नमित और संजय ने झुककर दोनों के चरण-स्पर्श किए।

"वन्डरफुल मम्मा, आपने यह बहुत अच्छा किया कि नानी और नानू को यहाँ ले आईं। अब मुझे अकेलापन महसूस नहीं होगा।" सुष्मिता ने चाचीजी से लिपटते हुए कहा। चाचीजी ने सुष्मिता के गोरे लाल कपोलों को प्यार से चूम लिया. .दामाद और बच्चों का नेह और आदर पाकर वह आश्वस्त हो उठीं।

नमित भी निश्चिंत हो उठे. .युवा होते बच्चों के लिए बुज़ुर्गों की शीतल छाँव आवश्यक है। उनके माता-पिता तो कई वर्ष पूर्व ही काल-कवलित हो चुके थे. .वह सदैव उनकी कमी महसूस करते रहे थे। उन्हें लगा कि नंदिता ने अपने घर के आँगन में वटवृक्ष को लाकर अपने परिवार की नींव को डगमगाने से बचा लिया है। इस वयोवृद्ध वट-वृक्ष ने समय के हर उतार-चढ़ाव को देखा है, बसंत के सुहाने मौसम के आनंद के साथ वर्षा-आँधी-तूफान के झंझावातों को झेला है. इसकी हर पत्ती पर एक नया इतिहास रचा हुआ है. . परिवार के लिए ऐसे अनुभवी, सहनशील वृक्ष की ब ी आवश्यकता है जिसकी छत्रछाया और सान्निध्य पाकर ये युवा होते पौधे समय के थपे ों को सहना सीख सकेंगें और अप-संस्कृति की आँधी से बचे रहेंगें।

मन ही मन प्रसन्न होते हुए वह नंदिता से बोले, "देखो नंदिता, हमें सदैव इस बात का ध्यान रखना है कि हमारी किसी भी बात से हमारे इन बुज़ुर्गों का हृदय नहीं टूटे... उनकी देखभाल में कभी किसी बात की कमी न होने पाए। बच्चों को भी यह बात समझा देना।"

*

इंसानियत का जनाज़ा

आचार्य संदीप त्यागी 'दीप'

इंसानियत का आज जनाज़ा निकल रहा।
हैवान है हाथी पै विराजां निकल रहा।।

ईमान बेचते हैं बेईमान चौक पर।
नीयत लिए खराब है ख़्वाज़ा निकल रहा।।

मंडरा रही हैं कागज़ी फूलों पे तितलियाँ।
बासी स` फलों से रस ताज़ा निकल रहा।।

है छू रही बुलन्दी बदगुमानी हर कहीं।
जनता को रौंदता हुआ राजा निकल रहा।।

बारात है सूनी कहीं शहनाई के बिना।
अर्थी के संग में कहीं बाजा निकल रहा।।

नीलाम हो रही कलम, कलाम क्या करे।
काग़ज़ क़िताब बेचके ख़ाजा निकल रहा।।

अपने ही घर में हो चुके बेघर मियाँ यहाँ।
देकर के सूदख़ोर तक़ाज़ा निकल रहा।।

***

ज़िन्दगी : पहा ी गाँव

डॉ. किशोर काबरा

एक सीढ़ी धूप, सीढ़ी छाँव रे !
ज़िन्दगी जैसे पहा ी गाँव रे !

शिखर की पी ा बिखरती खाइयों में,
खाइयाँ सब अतल की गहराइयों में।
आँसुओं के कब रुके हैं पाँव रे !
ज़िन्दगी जैसे पहा ी गाँव रे !

तह किए सपने बिछे हैं खेत बनकर,
खेत सारे मर चुके हैं रेत बनकर।
जी रहा है ची ओढ़े काँव रे !
ज़िन्दगी जैसे पहा ी गाँव रे !

छो कर जो घर-नगर औ गली-कूचा,
सौंप देते नियति को जीवन समूचा।
हार कर भी जीत जाते दाँव रे !
ज़िन्दगी जैसे पहा ी गाँव रे !

*****

अगर मैं पालता तोता

डॉ. किशोर काबरा

तुम्हारी आँख की उपजाऊ जमीं में
आम बोए थे,
धतूरे उग रहे हैं;
तुम्हारी कल्पना की स्वच्छ-निर्मल निर्झरी में
हंस पाले थे,
मगर
ये रामनामी शुक उमरिया चुग रहे हैं।
क्योंकि
हमने आचरण की क्यारियों को
अव्यवस्था और कुण्ठा का
विषैला जल पिलाया था।
क्योंकि
हमने जागरण की सीपियों को
मूर्छना की, वासना की खाद-मिट्टी दे
जिलाया था।
आम को आकाश दे दे,
वह चुनौती है कहाँ अब?
हंस तो मोती चुगेंगे,
और मोती हैं कहाँ अब?
सोचता हूँ -
आम क्यों बोए, धतूरे ही अगर बोता,
तो इतना दर्द क्यों होता?
सोचता हूँ -
हंस क्यों पाले, अगर मैं पालता तोता
तो इतना दर्द क्यों होता?

****

- त्याग यह नहीं कि मोटे और सख़्त कप े पहन लिए जाएँ और सूखी रोटी खाई जाए। त्याग तो यह है कि अपनी आरज़ू, इच्छा और ख़्वाहिश को जीता जाए।

  सूफ़ियान सौरी

- इस दुनियाँ में हम जो लेते हैं, वह नहीं; बल्कि जो देते हैं वह हमें धनवान बनाता है।

  बीचर

- पाप पहले मज़ेदार लगता है, फिर वह आसान हो जाता है, फिर हर्षदायक; फिर वह बार-बार किया जाता है, फिर उसकी ज जम जाती है; फिर आदमी गुस्ताख़ हो जाता है, फिर हठी, फिर वह कभी न पछताने वाला हो जाता है, अंत में वह तबाह हो जाता है।

  लीटन

मिट्टी की तासीर

डा. रामकुमार गुप्त

ओसामा बिन लादेन
काश, तुम मेरे देश में जन्में होते
तो ऐसे न होते,
तुम जान पाते कि
मेरे देश की जलवायु
और मिट्टी की तासीर क्या है?
मेरे देश में भी
आततायी जन्में हैं -
हिरण्यकश्यप, रावण और कंस
पर ये सब -
तुम्हारी तरह बुज़दिल, वहशी,
या घुसपैठिए नहीं थे,
ये ल ़े, खुले मैदानों मे
और वार किए छाती पर,
तुम्हारी तरह छिप-छिपकर
निहत्थों को आतंकित नहीं किया।
ओसामा बिन लादेन,
काश तुम मेरे देश में जन्में होते
तो तुम जानते कि
सत्य और न्याय जहाँ है,
विजय भी वहाँ है !
तुम्हें पता है -
कारगिल के युद्ध में,
गीता फिर से रची गई !
दुनियाँ ने भी देखा -
देश के चरित्र की परीक्षा -
हिमालय पर ही होती है।
ओसामा बिन लादेन -
तुमने जो सोचा, वह नहीं हुआ !
हुआ वही, जो होना था,
जागी फिर वही , मिट्टी की तासीर -
पूरा देश ख ा हो गया
हमारे रण-बाँकुरों के साथ,
मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे -
सब एक हो गए।
बूढ़े सेनानी कमरपट्टा बाँधने लगे,
जवानों का खून खौल उठा,
सेना में शहीद होने की, कतारें लग गयीं।
बहनों ने सँभाले रक्षा-कवच
फूल के मानिंद बच्चे बोल उठे -
हमें तो लेना वनमाली,
उस पथ पर तुम देना फेंक
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने,
जिस पथ जावें वीर अनेक।'
ओसामा बिन लादेन,
काश तुम मेरे देश में जन्में होते,
तो इतने वहशी,
इतने बुज़दिल न होते!
और देखते मिट्टी की तासीर!!

* * * * * *

दृष्टिकोंण लघु कथा

सूर्यकांत नागर

फिल्म शुरू होने के पहले तीन-वर्षीय बालक खचाखच भरे सिनेमा हॉल की बालकनी की रेलिंग पर झुककर नीचे झाँक रहा था।

'इस तरह मत झुको बेटा,' नीचे गिर जाओगे, बाप ने बेटे को समझाया। ल का नहीं माना। नीचे हॉल में बैठे दर्शकों को वह और झुककर देखने लगा।

'तुम्हें मना किया न. . . नीचे गिर जाओगे तो चोट लग जाएगी,' पिता ने थो ा उत्तेजित होकर कहा।

'नीचे बैठे लोगों पर गिरूँगा तो उन्हें भी चोट आएगी न पापा?'

'कह रहा हूँ कि गिर जाएगा तो चोट लगेगी, लहुलुहान हो जाएगा।'

'नहीं पापा, पहले यह बताएँ कि यदि मैं जोर से उन लोगों पर गिरा तो उन्हें चोट लगेगी या नहीं?'

फिर वही बात,' पिता को चिढ़-सी आ गई।

'पापा, बताईए न कि मेरे गिरने से नीचे बैठे लोग भी घायल हो सकते हैं या नहीं?' बच्चे ने जिद की।

बाप ने गुस्से में आकर बच्चे को जोर का धौल लगाया और निर्दयता से उसे अपनी ओर खींचते हुए कहा, 'साला दूसरों की चिन्ता करता है।'

****

दुर्घटना या प्रारब्ध

स्नेह ठाकुर

दुर्घटना कभी भी और कहीं भी हो सकती है पर जब दुर्घटना अपने देश में हो तो दिल कुछ सहम-सा, विरक्त-सा हो जाता है. पता नहीं क्यों! शायद इसलिए कि अपने देश से दूर, बहुत दूर रहते हुए प्रवासी भारतीयों के पास देश की मुट्ठी-भर सुखद अनुभूतियाँ ही साथ रह जाती हैं और इंसान उसे अपनी भींची मुट्ठी से खिसकने नहीं देना चाहता.

पर क्या यह दुर्घटना ही थी--या भाग्य, प्रारब्ध! क्या कहूँ इस घटना को! कुछ समझ में नहीं आता.

पिता की बीमारी का पता चला और आनन-फानन में तैयारी कर टोराण्टो, कैनेडा से चल प ी थी.

थकी देह और चिन्ताओं, दुर्भावनाओं, आशंकाओं से भरा मस्तिष्क लिए, एअर-इंडिया के, रात्रि नौ-पचपन पर चलने वाले विमान पर अन्ततः सवार हो गई.

सीट खि की के बगल में थी, सिर स्वतः ही उससे टिक गया और एक अधूरा-सा उच्छ्वास खूँटा तु ाए नवजात बछ े की तरह बिचक कर मुँह के बन्धन से छूट भागा. उच्छ्वास में राहत की साँस भी थी . .वीज़ा, टिकट, सीट, स्वास्थ्य सम्बन्धी औपचारिकताओं आदि के झमेले से छुटकारे का आभास था, पर चिन्ता का भार हृदय पर प ी किसी प्रस्तर शिला से कम न था. यद्यपि चिन्ता एक अनुभूति है पर अनुभूति भी वास्तविकता में कितनी वज़नी, भारी होती है इसका अंदाज तभी मालूम प ता है जब इंसान इसके शिकंजे में कसा हो.

हालाँकि ब े भइया ने कहा भी कि, 'घबराने की बात नहीं है पर तुम आ जाओ तो अच्छा है' और इस छोटे-से दो अक्षर के 'पर' ने आशंकाओं को पर लगा दिए. मन द्रुतगति से बेलगाम घो े जैसा हर जानी-अनजानी चिन्ताओं की नाद में मुँह मारने लगा. सम्भव है कि स्वजनों के बीच बैठ ब ी-से-ब ी आपदा झेल जाना भी उतना दुष्कर नहीं जितना विदेश में आपदा तो दूर रही उसकी आशंका से भी पार पाना.

पति मेरी मनोस्थिति से अनभिज्ञ न थे. हालाँकि वो नहीं चाहते थे कि इस मनोदशा में मैं अकेले सफर करूँ पर नौकरी से अचानक लम्बा अवकाश मिलना यहाँ सहज नहीं है जब तक कि कोई गमगीन, ब ा अपातकाल न हो. ब े भइया ने यही कहा कि, 'ऐसी घबराने की कोई बात नहीं है, बाबूजी अब खतरे से बाहर हैं, आ सको तो अच्छा है. पिताजी का बस तुम्हें देखने का मन है.'

पर नारी प्रकृति को क्या करूँ? दुश्चिन्ताओं को परे ढ़केल नहीं पा रही थी. सबके समझाने के बावजूद एक प्रश्न सर्प-सा फन उठा ही लेता था कि कहीं भइया सिर्फ़ आश्वासन देने के लिए ही तो ऐसा नहीं कह रहे हैं. मेरी इस मनःस्थिति से अवगत मेरे पति मुझे एक तरह से जबर्दस्ती ही पारिवारिक डॉक्टर के पास ले गए और उसके द्वारा दी गई 'सेडेटिव' औषधि, नींद की गोली का नुस्ख़ा भरवा लाए व गोलियों की शीशी मेरे पर्स में ठूँस दी.

क्षण-क्षण छलछलाई आँखों के आक्रमण से बचने के लिए पर्स से शीशी निकाली व एक गोली खा ली. शायद उनींदी अवस्था में इस जाग्रत अवस्था से कुछ ज्यादा आश्वस्त हो सकूँ. मस्तिष्क का मंथन सहने की शक्ति नहीं थी. पति ने ठीक ही कहा था कि जब दिल्ली पहुँचकर बाऊजी को अच्छा-खासा देख लोगी तभी तुम्हें शांति मिलेगी.

टोराण्टो से सबसे जल्दी पहुँचने वाली फ्लाइट ली थी. बस टोराण्टो से लंदन व लंदन से सिर्फ़ दो घंटे के अन्तराल के बाद दिल्ली. पर इतना समय काटना भी आसान न

था. नींद की दवाई की गोली रात्रि के कुछ घंटे सुषुप्तावस्था में निकाल देगी इस अभिप्राय से शरीर को ढ़ीला छो , सीट की 'बैक-रेस्ट' पर सिर टिका, टांगों पर कम्बल डाल लिया और खि की से काले शून्य आकाश में ताकते-ताकते न जाने कब सुप्तावस्था में पहुँच गई.

आँख तो तब खुली जब किरणों ने हल्के-से खि की थपथपाई. रात खि की का पर्दा तो बंद किया नहीं था अतः ऊषा बिना बाधा वहाँ से झाँकने लगी. नींद से कुछ स्वस्थ शरीर, मन और मस्तिष्क व थो ी-थो ी नींद की खुमारी और सूर्योदय के समय का प्राकृतिक सौन्दर्य, सबने निलकर एक समाँ-सा बाँध दिया. कुछ समय के लिए अपनी अवस्था से बेखबर टुकुर-टुकुर बाहर झाँकने लगी. ऐसा लगा मानो भोर ने आहिस्ता से अपना घुँघट सरकाकर झाँका. मौसम साफ देखकर सूर्य ने अपनी कोमल किरणों को धीरे-धीरे उतारा. एक-दूसरे की ऊँगली थामें हुए किरणें विमान की खि की के शीशों से अन्दर झाँकने लगीं. भोर उजाले का आँचल थाम कर एक-एक पग आगे बढ़ रही थी. खि की से परे क्षितिज पर उभरी लालिमा की गहराईयों में मैं डुब गई. साथ ही विचारों की नागिन कभी इस करवट कभी उस करवट डसती रही.

लंदन हवाई अड्डे पर दो घंटे का विराम दे विमान पुनः अपनी उ ान पर उ चुका था. समय की रेत मुट्ठी से शनैः-शनैः फिसल रही थी. समय के पंख लगा, हवाई जहाज अपनी ही गति से हवा में तैरता-सा चला जा रहा था. सुबह से दोपहर हुई और दोपहर से साँझ. दिनभर का लम्बा सफर तय करने के बाद थकी हुई सूरज की पलकें झुकने लगीं, झपझपाने लगी. संध्या ने कसमसाकर, अल्ह ता भरी अँग ाई ली और अधखुले नयनों से सूर्य को उसके सप्त घो ों के रथ पर सवार अस्ताचल की ओर प्रस्थान करते देखा. धुँधलका अपनी बाँहें फैलाकर सुनहरी धूप का आलिंगन करने के लिए उम प ा. शर्माई, लजाई वह आरक्त-कपोल स्वामिनी आहिस्ता-आहिस्ता किसी पहा की ओट में मुँह छिपाने के लिए पीछे ही पीछे सरकने लगी. दिन थककर संध्या के आगोश में विश्राम हेतु सिमटने लगा. पश्चिम का नभ-मंडल केसर के रंगों से भीग-सा गया था. पीलिमा ने नारंगी, लाल चुनरी ओढ़ ली थी. ऐसा लगा जैसे निशा के स्वागत हेतु प्रकृति ने पलाश पुष्पों का कालीन बिछा दिया हो.

पुरुष और प्रकृति का मिलन--सूर्यास्त हो गया. अचानक इस सूर्यास्त ने झील के किनारे देखे एक और सूर्यास्त की याद ताजी कर दी. झील में डोल रहे कमल ने अपनी खुली पंखु ियों को समेट लिया किन्तु मिलन की माधुरी में अलमस्त भौंरा कमलिनी की गोद से अपने को विलग न कर पाया, उसी में समाहित रहा. प्राण गँवाने का भय होते हुए भी भ्रमर अपनी प्रियतमा के आगोश को त्यागकर बाहर निकलने के लिए तैयार नहीं. मज़बूत काठ को काटकर भेद देने की सामर्थ्य रखने वाला भ्रमर कमलिनी की कोमलतम पंखु ियों को भेदने के लिए तत्पर नहीं.

रात अपने डैने फैलाए बढ़ती चली आ रही थी. आकाश पर काली चादर फैल रही थी. चारों ओर अंधकार का साम्राज्य छा गया--गहरे स्याह समुन्दर-सा अन्तहीन. जिस मन को दिन के कार्यकलापों व प्रकृति के बदलते रंगों की चाबुक लगा-लगा दुर्भावनाओं के जंगल में भटकने से रोके हुए थी, रात की कालिमा में सक्रियता के बोझ से भारी वह अंकुश निष्क्रियता के आँचल में लिपट, फूल-सा हल्का हो हाथ से दूर छिटक गया. अभी तो दिल्ली पहुँचने के लिए सारी रात काटनी थी. मन को भटकन से बचाने के लिए पुनः दवाई का सहारा लिया.

हवाई अड्डे पर ब भइया का खिला चेहरा देख क्लान्त शरीर, मन और मस्तिष्क सब तरोताजा हो गए. सारी दुश्चिन्ताएँ कपूर की तरह उ गईं. प्राणों में नवजीवन,

नवस्फूर्ति का संचार हुआ. जीवन में अनुभूतियाँ कितना ब ा खेल खेलती हैं, अब तो शरीर और मन दोनो में ही थकान का लेशमात्र भी न महसूस हुआ. राहत की अनुभूति ने थकान को कोसों दूर खदे दिया.

हालँकि पिताजी काफी कमज़ोर हो गऐ थे पर बेटी के मिलन की सुखद अनुभूति ने उनके मुखमंडल पर आनंद की आभा बिखेर दी. न जाने कितने पलों तक हम दोनो आनंद के उस स्त्रोत में आकंठ डूबे रहे. उनकी गोद में समाई मैं चारों ओर के वातावरण से बेखबर, केवल पिता के अपने सिर पर फिरते प्यार-भरे हाथ से ही भिज्ञ रही; जैसे सारी इन्द्रियाँ उस स्पर्श से अभिभूत हों और कुछ जानने-समझने की क्षमता खो चुकी हों.

पिता के स्पर्श में एक और स्पर्श जु ा. माँ के ममता-भरे स्पर्श ने अभिभूतता की अतल गहराईयों से हौले-हौले अपनी ओर खींचा. इतने दिनों के तनाव के क्षण पिता को देख आँखों की राह बह गए. मन सुस्थिर हुआ. माँ के ममता-भरे स्पर्श ने भावनाओं के दरिया से निकाल स्वजनों की उपस्थिति का भान कराया. झिलमिलाती आँखों से देखा भाभी व गु ि या-सी, सलोनी-सी आकांक्षा मुस्कुरा रही है.

पिताजी दिन-प्रतिदिन ठीक हो रहे थे. समय हवा के पंख लगा उ चला. अब तो बापिस जाने में भी बहुत ज्यादा समय नहीं बचा था. आनंददायी क्षणों में समय की रेत कितनी जल्दी इंसान की मुट्ठी से फिसल जाती है. पता ही नहीं चलता कब दिन हुआ कब रात.

आजकल माँ व भाभी दोनो ही बारी-बारी से मेरे बहुत मना करने पर भी मेरे लिए खरीदारी में व्यस्त रहीं; कभी दामाद के लिए, तो कभी मेरे दोनो बेटों के लिए. बाज़ार के चक्कर लगते रहे. माँ या भाभी में से एक पिताजी के पास घर रहतीं; हाँ आकांक्षा जरूर सारे समय साथ रहती, चि ि या-सी चहकती-फुदकती हुई.

ऐसे ही एक दिन शापिंग के लिफाफों से लदे-फदे हम घर पहुँचे ही थे कि दूरभाष की घंटी टनटना उठी. स्वाभावानुकूल आकांक्षा ही थैलों को ध ाम से वहीं पटक टेलिफोन उठाने दौ ी. उसकी इस हब ा-तब ी पर भाभी और मैं दोनो ही अनायास हँस प े. बचपन की अल्ह ता का सानी नहीं.

आकांक्षा बैठक से ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला रही थी, "बुआ हँसिएगा बाद में, पहले यहाँ आकर फोन ले लीजिए. टोराण्टो से फूफाजी का फोन है. आपके बिना उनका दिल नहीं लगता" -- और जैसे ही मैं फोन लेने पहुँची वो अपनी आँखें मटका-मटका कर बोली, "लीजिए फूफाजी, बुआजी से बात कर लीजिए"--मैं अभी भी उसके हाव-भाव पर मंद-मंद मुस्कुरा रही थी कि दूरभाष पर इनकी आवाज़ आई. कुशलक्षेम के बाद कहने लगे, "सुधीर की मम्मीजी की तबीयत बहुत खराब है. शायद किडनी फेल हो गईं हैं. सुधीर बहुत चिन्तित है. वो तो वहाँ जाने के लिए तैयार बैठा है पर उसे पीलिया रोग-ज्वाइण्डस हो गया है. बीमारी की इस हालत में ना ही उसका सफर करना उचित है और ना ही माँ की इस हालत में उसे माँ के पास जाना चाहिए. क्या तुम एक-दो दिन के लिए लखनऊ जा सकती हो? तुम्हारे जाने से उसे बहुत तसल्ली हो जाएगी. हालाँकि डॉक्टर के इज़ाज़त देते ही वो इंडिया जाने के लिए तैयार बैठा है पर तनाव और फिकर से उसकी बीमारी और लम्बी खिंच रही है."

ना का सवाल ही नहीं उठता था. मैंने उन्हें हाँ कर दी. सुधीर हमसे खून के रिश्ते से तो नहीं पर भावनाओं के रिश्ते से जु ा हुआ है. वो इन्हें भइया और मुझे भाभी न केवल कहता है वरन् तहेदिल से मानता भी है. उसकी मम्मी टोराण्टो दो बार आ चुकीं हैं और हर बार हमारा एक-दूसरे के प्रति स्नेह गहराता गया. मम्मी की बीमारी से वो कितना

परेशान होगा इसका अंदाज़ मैं सहज ही लगा सकती हूँ. हाथ कंगन को आरसी क्या? कुछ समय पहले ही तो मैं भी चिन्ताओं के इस तनाव की भुक्तभोगी रही हूँ.

चाची के पास जाना तो निश्चित था पर परेशानी तो तब प ी जब उस दिन ब े भइया बुखार की हालत में दफ्तर से वापिस आए. सभी को इस बात की उलझन थी कि मैं अकेले न सफर करूँ.

हालाँकि भइया का बुखार कोई चिन्ता वाली बात नहीं थी, आम खाँसी ज़ुकाम बुखार था, फ्लू था पर ऐसी हालत में वो सफर तो नहीं कर सकते थे और मैं समयाभाव के कारण उनके ठीक होने का इन्तज़ार नहीं कर सकती थी. और फिर दिल्ली से लखनऊ ही तो जाना था. अकेले जाने में कुछ भी अनुचित न लगा. अभी पिछले साल ही तो मैं अकेले ही 'वियाना-आस्ट्रिया' गई थी और फिर वहाँ से 'बूडापेस्ट-हंगरी'. यहाँ आने से कुछ महीने पहले ही मुझे एक कान्फ्रेंस में अमेरिका भी जाना प ा था अतः सबको इतना फिक्रमंद होते देख कुछ हँसी भी आई. मेरे बहुत आश्वासन के बावजूद भी, कम-से-कम माँ आश्वस्त नहीं हुईं और उन्होंने जाने से पहले गले की सोने की चेन व कानों के बुन्दे उतरवा ही लिए. गा ी चलने से पहले दुनियाँ भर की हिदायतें मिलती रहीं और मैं भी यद्यपि उन हिदायतों के प्रति गम्भीर नहीं थी फिर भी चुपचाप उन्हें सुन हाँ-हूँ करती रही. माँ बार-बार कहती रहीं कि 'तुम इतने सालों से देश के बाहर हो अतः आजकल के सफर के खतरों से अनजान हो. खि की के शीशे गिराए रखना, सिर अन्दर रखना, हाथ अंदर रखना, लोग सिर बाहर होने पर बाहर से गले की चेन खींच लेते हैं, घ ी, अँगूठी उतार लेते हैं, पर्स पास दबाकर रखना, आदि-आदि और मैं हिदायतों को माँ का अतिरिक्त स्नेह मान, यद्यपि मन में भयभीत नहीं थी पर फिर भी उन्हें तसल्ली देती रही कि उनकी बातों की अवज्ञा नहीं करूँगी जिससे वो बेफिकर रहें.

रात्रि के साढ़े नौ बजे लखनऊ एक्सप्रेस रवाना हो गई और मैं खि की से हाथ निकाले जब तक वो दिखते रहे, हाथ हिलाती रही और जब अन्धकार ने उन्हें समेट लिया तो अपने को सफर के लिए स्थापित करने के प्रयत्न में जुट गई.

प्रथम श्रेणी के कूपे में एक और यात्री बैठे हुए थे. शांत, सौम्य व्यक्तित्व वाले सज्जन से दिख रहे उस यात्री पर नज़र मार खि की से बाहर की ओर देखा. रिमझिम बारिश की बौछारें तेज हो रहीं थीं. बारिश थमने का नाम लेने की जगह मूसलाधार होने लगी थी. लगा जैसे किसी ने बादलों के दरीचे खोल दिए हों.

अपनी प्रिय पत्रिका 'सरिता' हाथ में थामें बैठ तो गई पर आँखों के कटोरे चुम्बक की भाँति बाहर क कने-चमकने वाली बिजली से खिंचते रहे. न चाहने पर भी ध्यान उधर जाता रहा. किसी जवान विधवा के समान आसमाँ बिलखकर रो प ा. टपकते हुए आँसू धरती की प्यास बुझा रहे थे. बादलों की इस व्यथा को पवन देव भी नज़रअंदाज़ न कर सके, स्वयं पर संयम न रख सके. उनकी श्वासों का उतार-चढ़ाव इतना ज्यादा बढ़ गया कि वह काली रात तूफानी रात बन बैठी. ट्रेन की गतिशीलता से पिछ गए पे , तेज हवा के झोंकों से उख ने की सीमा तक झूमते वृक्ष ब े भयावह लग रहे थे. अंधकार के सीने को चीरती हुई ट्रेन की खि कियों के झीने प्रकाश में वो ऐसे लग रहे थे मानों वे पे न होकर काले-कलूटे, ब े-ब े दानव अपने हाथ-पैर हिला रहे हों और दैत्यों के भयानक अट्टहास के समान ही बादलों की गर्जना गा ी के पहियों की आवाज़ में मिल और भी क्रूर बन जाती. रह-रहकर आकाश में प्रकाश की आ ी-टेढ़ी लकीर उभरती और सारा वातावरण कुछ पलों के लिए तीक्ष्ण प्रकाश में नहा जाता किन्तु अगले ही क्षण घटाटोप अंधकार पुनः वातावरण को अपनी काली चादर में लपेट लेता.

बाहर की विद्युत्-रेखा की तरह यादों के बादलों में भी बिजली की एक लकीर कौंध गई और अनायास ही अधरों के दोनो कोने स्मित हास्य के छिटकने से विपरीत दिशाओं में हल्के-से खिंच गए. बहुत साल पहले रेल-यात्रा के दौरान हुई घटना अतीत के ताने-बाने को काट ऊपर उभर आई थी. स्टेशन तो अब याद नहीं बस वाक्या ही याद है. स्टेशन पर चढ़े एक तात्कालिक यात्री ने डिब्बे में चारों ओर नज़र घुमाकर जब कहीं स्थान नहीं देखा तो सीट पर पसरी हुई स्थूलकाय महिला से अनुरोध किया कि कृपया वो अपने पैर थो ं से समेट लें जिससे उन्हें बैठने की जगह हो जाए. अपने अनुरोध पर उन महिला के कान में जूँ भी न रेंगती देख, उनके दोबारा दोहराने पर महिला तमककर अपनी गाँव की भाषा में बोलीं--'गो (पैर) ही तो हैं काट देई का?'

सफर की तैयारी का तनाव छँट गया था. सोने से पहले मुझे पढ़ने की आदत है अतः आराम से बर्थ की दीवार पर सिर टिका 'सरिता' की कहानियों में खोने जा ही रही थी कि शायद घटनाचक्र के धुंध से निकले उस स्मित हास्य व मुझे सोने की जल्दी में न देख सहयात्री सज्जन ने वार्त्तालाप के तारों को खींचने का प्रयत्न करते हुए पूछा, 'आप कहां तक जा रही हैं?'

मैंने संक्षेप में पर आदरयुक्त स्वर में कहा--'लखनऊ'

कुछ क्षण तो वो मौन रहे फिर जैसे अपने को न रोक सकें हों, बोले--'लगता है कि आप विदेश में रहतीं हैं?'

उनके इस प्रश्न से कुछ अचकचा गई मैं. स्वदेश तो छो ही दीजिए मैं तो विदेश में भी भारतीय परिधान सा ी ही पहनती हूँ. अपने देश, अपनी भाषा, अपने परिधान, अपने भारतीय होने पर मुझे गर्व है तो इन्होंने मुझमें ऐसी क्या असंगति देखी जिससे ऐसा प्रश्न कर बैठे! मैंने अपने सामान की तरफ नज़र घुमाई, शायद इससे ही उन्हें कुछ ऐसा सुराग़ लगा हो....

शायद मेरे इन मनोभावों को उन सज्जन ने ता लिया था, हँसकर बोले, 'आपके हाव-भाव ही कुछ ऐसे हैं. जब से आप आई हैं ऐसा लगता है कि आप हर दृश्य-परिदृश्य को स्याही-सोख्त-पेपर _ ब्लाटिंग पेपर की तरह अपने में सोख लेना चाहती है. जिन चीज़ों को हम रोज़मर्रा की जान उनपर एक निगाह भी नहीं फेंकते आप उनको भी भरपूर ललक से देख रही हैं.'

इस बार मेरे हँसने की बारी थी - 'जी हाँ, आपने ठीक ही अनुमान लगाया. सालों विदेश में रहने पर हालाँकि अतीत के घेरे सिमटने लगते हैं पर साथ ही साथ वो कपूर की तरह उ ते नहीं हैं बल्कि 'कॉनसेण्ट्रेटेड फार्म में, सत्व-रूप अणु में संकलित हो जाते हैं; और यही अतीत के बिखरे टुक ं, अतीत के घेरे में सिमटी स्मृतियाँ, जब कभी वर्त्तमान किसी बोझ से भारी हो उठता है, सतह पर उभर आती हैं और जीवन की जिजीविषा से जूझने की प्रेरणा देती हैं. स्मृति कोष की हर छोटी-ब ी, अच्छी-बुरी, सुखद-दुखद स्मृतियाँ अपने में महत्वपूर्ण हैं. अतः जब कभी स्वदेश वापिस आने का मौका मिलता है तो हर छोटी-ब ी याद को दिमागी कम्प्यूटर चिप में सहेजने का मन हो आता है. और इस तरह अतीत के बिखरे टुक ों से विदेश का वर्त्तमान गुलज़ार रखने की कोशिश करती हूँ.'

कुछ क्षण मौन रहने के उपरांत पुनः वो पितातुल्य सज्जन कुछ संकोच से भरे बोले _ 'शायद मैं सीमा का अतिक्रमण कर रहा हूँ पर कहने से स्वयं को रोक भी नहीं पा रहा हूँ. मेरे विचार से यदि आप अपना कूपे बदल लें तो बेहतर होगा. मैं मेरठ तक ही जा रहा हूँ, उसके बाद सारी रात अकेले आपका सफ़र करना, मेरी सलाह में उचित नहीं है.'

मैं उनकी सहृदयता से अभिभूत हुए बिना न रह पाई. जब कभी कोई पूर्णतः अपरिचित बिन माँगी सलाह को थाली में परोसकर देता है तो या तो हम उसे पूर्णतः बेसिर-पैर की समझकर कचरे की टोकरी में फेंक देते हैं या फिर उसे बहुत गम्भीरता से लेते हैं. अकेले सफ़र के निर्णय से चिन्तित पिता का चेहरा सहयात्री के उस सौम्य चेहरे से रह-रहकर झाँकने लगा. बाहर अभी भी इस तरह मूसलाधार वर्षा हो रही थी मानों किसी ने बादलों के दरीचे खोल दिए हों. रात की कालिमा में हितचिन्तकों की सलाह कभी चाँदी के तार सदृश्य और कभी वर्षा ऋतु की गीली धरती पर रेंगने वाले केंचुँओं के रूप में मस्तिष्क में उथल-पुथल मचाती रही. मैं उन सज्जन के मशवरे को नज़रअंदाज़ न कर सकी और उठते हुए बोली _'देखती हूँ शायद कहीं जगह मिल जाए.'

मैं ट्रेन के कॉरीडोर में एक ओर से दूसरे अंत तक चक्कर काट आई पर सब कूपों के दरवाज़े बंद थे. रात्रि के उस प्रहर में आचार-संहिता की सीमाओं का उल्लंघन कर दरवाज़ों पर दस्तक देने का औचित्य पशोपेश में डाल रहा था. निराश होकर पलट ही रही थी कि एक कूपे का द्वार खुला. शशोपंज से उभर आई शिथिलता प्रकाश-किरण के घुसते ही अंधकार की तरह तिरोहित हो गई और मैं बिजली की चपलता से उस द्वार के सामने जा ख ी हुई. चार के उस कूपे में छः यात्री समाए हुए थे _चार पुरुष और दो स्त्रियाँ.

मैंने उन्हें अपनी द्विविधापूर्ण परिस्थिति से अवगत कराते हुए उनसे अनुरोध किया कि कृपया वो मुझे इस कूपे में रात व्यतीत करने की अनुमति दे दें और यहाँ से कोई पुरुष यात्री मेरी आरक्षित बर्थ का उपयोग कर लें.

अपना अनुरोध स्वयं को ब ा यथासंगत लगा पर जरूरी नहीं कि आप की सोच दूसरे की सोच भी हो. जरूरी नहीं कि शाम की शफ़क, साँझ की लालिमा संसार के सब प्राणियों को एक जैसी ही लगे. उसकी सुर्खी सब में एक ही रंग घोले. आकाश में विचरते बादल-खंडों के मिलन और बिछु न से बनी आकृतियाँ हर मानव अपने अन्तरतम की अनुभूतियों के अनुरूप ही देखता है. हर लम्हा हर इंसान अपनी तरह खोलकर देखता है. मेरी परिस्थिति ने मेरे अंदर जो भय अंकुरित किया था, वह या तो वो देख न सके या फिर उनके मेरे ध्येय के प्रति संशय ने उन्हें सशंकित किया _'आप तो स्वयं देख ही रही हैं कि हम लोग खुद ही संख्या से ज्यादा हैं _हाँ, यदि आप चाहें तो इन महानुभाव से पूछ लें, ये हमारे साथ नहीं हैं' _कहते हुए एक सज्जन ने एक ओर बैठे हुए यात्री की ओर तर्जनी से इंगित किया.

पर वह आशा की किरण चमकने से पहले ही विलुप्त हो गई. उन महाशय ने सपाट शब्दों में कह दिया _'मेरे पास यहाँ का आरक्षण है. जब तक टिकट-कलेक्टर स्वयं मुझे दूसरी जगह नहीं देता मैं कहीं नहीं जाऊँगा.'

अभी तक तो उस कम्पार्टमेण्ट में किसी भी अधिकारी का चेहरा नहीं दिखा था. रात्रि के इस प्रहर में शायद अब दिखने की उम्मीद भी नहीं थी अतः आशाओं की किरणों को वहीं बुझा थके पाँवों से अपने कूपे की ओर लौट आई. मन को इस दलील से आश्वस्त किया कि अनेक बार पूर्वाग्रह का बंधन मनुष्य को बिला-वज़ह भ्रम में डाल देता है. अपने हितचिन्तक को सीट न मिलने की स्थिति से अवगत करा सरिता पत्रिका के पन्नों में स्वयं को खोने हेतु, निढ़ाल, बर्थ पर पैर फैला लिए.

वर्त्तमान अपना भार समय के पंखों पर तौलता हुआ कभी न लौटने के लिए किसी अज्ञात दिशा में उ चला.

गा ी की गति धीमी हुई. पहियों के घर्षण का शोर कम होते हुए एक धक्के के साथ खत्म हो गया और गाजियाबाद के स्टेशन का शोर व यात्रियों के चढ़ने-उतरने की हब ा-तब ी बढ़ गई.

सोच ही रही थी कि इस समय चाय पिऊँ या नहीं कि कूपे के दरवाज़े पर ख े व्यक्ति पर नज़र गई और अनायास ही शरीर में एक विद्युत्-रेखा की सिहरन दौ गई. एक ही नज़र में ऐसा क्या दिखा, स्वयं को ही समझ नहीं आया. शायद मन के कोने में दबी भयाकृति ने झरोखे से झाँका था.

उन महाशय के साथ उनके पिछलग्गू चमचे जैसे व्यक्ति पर न चाहते हुए भी नज़र फुदककर चली जाती. पहियों के घर्षण की आवाज़ क्रमशः तीक्ष्ण से तीक्ष्णतर होने लगी. अब तक चमचे जैसे महानुभाव नें शराब की लालपरी बोतल व ग्लास व्यवस्थित ढ़ंग से रख दिए थे. बंद परी को बोतल से मुक्ति देते हुए ग्लास में डालकर, खींसें निपोरते हुए उन महानुभाव ने अपने आराध्य को पेश की जो अभी तक ब े कुत्सित भाव से सहयात्री पर एक नज़र फेंक मुझे सिर से पैर तक परख रहे थे.

यद्यपि मैं उनकी नज़रों को नज़रअंदाज कर अनभिज्ञ-सी बनी प्रस्तर-मूर्ति की भाँति बैठी रही पर मेरा रोम-रोम बलि के बकरे की तरह उनकी हर नज़र से वाकिफ़ रहा.

पहले वाले सज्जन सहयात्री की बेबस दारुण नज़रें, मानसिक तनाव, एकदम बदला हुआ परिवेश, क्रूर और आतंकभरा, किसी भी पल कुछ भी त्रासक और भयावह घटने की बनैली आशंका, कूपे की परिधि को और भी छोटा करने लगी; दीवारें सिमटने लगीं और उनके दुर्भेद्य से दुर्भेद्यतर होने का एहसास गहराता गया.

नए सहयात्रियों के चेहरों के भाव सिर्फ़ मेरी कल्पना के भयांकुरों से उपजे वृक्ष नहीं हैं, यह विश्वास अब तक मुझमें ज े जमा चुका था. मदिरा के घूँटों के बीच पहले ने हाथ को चिलम का आकार देकर एक लम्बा कश भरा. उनके नकलची ने भी हाथों की कुप्पीनुमा चिलम में फँसे सिगरेट का एक लम्बा कश खींचा और खाँसी के लम्बे धक्के तले आ गया. दोनों ही बेशरम, बेढ़ंगे ढ़ंग से हँस प े.

बाहर बादलों ने अपने पट बंद कर दिए थे अतः बूँदों का झरना बंद हो गया था पर दूर-दूर तक कहीं भी चाँद न था. तारे बहुत ही मद्धिम, हल्के-हल्के टिमटिमा रहे थे जैसे उनका वोल्टेज़ डाउन हो गया हो, उनकी बैटरी खत्म होने पर हो.

सोच का घो ा पूरी गति से दौ रहा था. विवेक मन पर इस तरह सवालों के तीर फेंक रहा था जैसे ढोली ढोल के दोनों सीने पर सटाक से चाबुक जैसी संटी मार रहा हो.

इस एहसास ने कि मेरठ के बाद इन यात्रियों के साथ शायद अकेले ही यात्रा करनी प े, निष्क्रिय सोच के घो े की लगाम खींची और चिन्ता से शिथिल शरीर की शिराओं को चुनौती के प्रसव ने क्रियान्वित कर उन्हें गति दी.

मन ही मन प्रार्थना करते हुए कि भगवान करे कोई न कोई कूपे का द्वार खुला मिल जाए, बिना कुछ सामान साथ लिए उठकर ऐसे चल प ी मानो शौचालय जा रही हूँ.

भाग्यवश पहले वाले कूपे का दरवाज़ा खुला हुआ था. इस बार के अनुरोध में शायद चेहरे की असहजता व असहायता टपक रही थी या था पूरी बर्थ का लालच--उन महाशय ने टिकट कलेक्टर का और इन्तज़ार न कर मुझसे सीट बदलना स्वीकार कर लिया.

बन्द होठों के कपाट खोल उस छोटी-सी दरार से एक उच्छ्वास चुपचाप बाहर सरक गया और एक ओर से दूसरी ओर, बँधी डोर में हुए हल्के-से खिंचाव के स्पन्दन से खिंच गई एक स्मित रेखा.

गा ी की धीमी प ती गति से अंदाज़ लगा कि मेरठ आ गया है और अनजान शक्ति के प्रति नास्तिक-आस्तिक की परिभाषाएँ भुला मस्तक स्वयं ही नतमस्तक हो गया कि समय रहते मुझे भय और आशंकाओं से छुटकारा मिल दूसरे डिब्बे में पनाह मिल गई.

उस यात्री का शुक्रियादा करते हुए उसे साथ ले जैसे ही अपने कूपे में पहुँची पितातुल्य सज्जन सहयात्री की आँखों में आश्वस्तता चमक उठी. परिचय जितना मन से होता है उतना वाणी से नहीं होता. उनकी सौहार्द्रयता पर मन पसीज उठा. कुछ मिलन हर्ष के आँसुओं के पुष्पों से समृद्ध बनते हैं और कुछ मिलन जीवन के लिए अभिशाप सिद्ध होते हैं. आज एक साथ दोनों ही मिलन अपने विभिन्न रूपों में आ ख े हुए और स्मृति के मानसपटल में अपने विरोधाभासी रूपों में अंकित हो गए.

उन बुज़ुर्ग ने अपना सामान सँभाला और मैंने अपना. कूपे से निकलते ऐसा आभास हुआ मानों कोई अभिशप्त देहरी लाँघी हो. हम दोनों ने ही एक-दूसरे को मंगलकामनाएँ दीं और स्टेशन पर उतर हाथ हिला वो अपनी राह चल दिए और मैं दूसरे कूपे में.

सामान उठाकर कूपे से निकलते वक्त उन दो यात्रियों की आँखों में देखा आश्चर्य का भाव क्या मेरी कल्पना की उपज थी या कटु सत्य--ऐसे विचारों की ऊहापोह, शारीरिक और मानसिक रूप से थका शरीर और मस्तिष्क ज्यादा देर झेल न सका और उन्हें झा - पोंछ, झटककर अपनी सीट देने वाले उस यात्री को पुनः मूक धन्यवाद दे, नए साथियों के सहयोग को सराह, नई पाई निश्चिन्तता की ऊँगली थामे निद्रा देवी के आगोश में कब सिमट गयी पता ही न चला.

गा ी के पहियों के संगीत की लय-ताल दो बार टूटी. 'बरेली' और 'शाहजहाँपुर' रात की काली तारों टँकी चादर के चँदोवे तले आए और चले गए पर अभिवादन स्वरूप ना तो वाणी ही मुखर हुई और ना ही आँखें खुलीं. बस पलकें कुछ झपझपाकर झपकीं और उन्हें मौन विदा दीं.

गा ी के झटके से पुनः स्वप्न-लोक के विचरण में बाधा उपस्थित हुई. जब तक पूर्णरूपेण सुप्तावस्था से जाग्रतावस्था में आती रेलगा ी छोटे से ग्रमीण 'हरदोई' स्टेशन से सरक अपनी तीव्र गति के लिए बेताब चल प ी थी.

नींद दूर छिटक गई थी पर खुमारी अभी भी पलकों पर विराजमान थी.

बाहर दिवस के आगमन हेतु लोग-बाग अपने को तैयार कर रहे थे. इतने समय के अंतराल के बाद आज रेलवे-लाइन के पास ग्रामीणों को लोटा लिए निवृत्ति के लिए बैठा देख अनायास ही एक स्मित-रेखा एक छोर से दूसरे छोर तक छिटक गई.

सुबह, बाँहें पसारे रात्रि को विदा दे रही थी. ऊषा की असंख्य किरणें निशा की काली चुनरी को भेद उसे जहाँ-तहाँ से झीनी पारदर्शी बना रहीं थीं और उनसे बचने की कोशिश में पीछे ही पीछे सरकती निशा अकस्मात् व्योम का साम्राज्य छो , जाने किन कन्दराओं में छुप नज़रों से ओझल हो गई.

अब तक चाय की तलब लग आई थी. कुल्ह ों की सोंधी महक को मन लालायित हो उठा था पर अब कुल्ह की चाय तो अतीत का इतिहास बन चुकी है. पता चला कि बहुत छोटे-छोटे स्टेशनों पर अभी भी कभी-कभार कुल्ह ों में चाय मिलती है, अन्यथा प्रगति की दौ में तेजी से बढ़ते हुए भारत में अब पेपर-कप या स्टायरोफोम-कप्स में ही स्टेशनों पर चाय मिलती है. पर कागज़ में मिट्टी का वो सोंधापन, उसकी खुशबू कहाँ! हाईजिनिक रूप से भी वो श्रेष्ठ थे, पिओ और फेंक दो, चीनी-मिट्टी, शीशे-काँच के कपों की तरह बार-बार तो उनका प्रयोग होता नहीं और फिर एन्वायरलमेण्टल प्वाइंट से भी तो वो बढ़िया

थे. मिट्टी के बर्तन मिट्टी में ही समा गए जैसे पंचतत्व शरीर अग्नि भेंट हो पंचतत्वों में समा जाता है.

इन अज़ीबोगरीब विचारों में डूबे हुए पता ही नहीं चला कब संडीला आ गया. वहाँ के मशहूर मोतीचूर लड्डू की हाँकों से स्टेशन गूँज रहा था. बेचने वाले लड्डू की हँि याँ लिए इधर-उधर दौ थे. मैंने भी हाथ बढ़ाकर चाची और उनके परिवार के लिए दो हँि याँ ले लीं. अभी पैसे दिए ही थे कि गा ी के पहिए गतिशील हो गए और शनैः-शनैः लय-ताल में घूमने लगे. समय का चक्र पहियों के साथ-साथ आगे बढ़ने लगा. पहियों से बजती धुन वक्त के साज़ पर बजती हुई धुन की आवाज़ में अपनी आवाज़ मिलाने लगी.

मैंने एक लम्बी साँस खींची और नथुनों से ढ़ेर सारी हवा फेफ ों में भर ली. उकँडूँ-कूँ-सी बैठ दोनो हाथ घुटनों पर टिका उस पर ठुड्डी रख गुज़रते हुए दृश्यों को आँखों के माध्यम से अन्तरमन में उतारने लगी. एक पोखर जैसा तालाब आया जिसके बीचों-बीच चमक-ही-चमक थी. लगता था सारी किरणें पोखर में ही उतर आई हैं.

'ऐश बाग' स्टेशन पहुँचते-न-पहुँचते कम्पार्टमेंण्ट में ह ब ी मच गई. यद्यपि कि यहाँ गा ी रुकती नहीं पर लखनऊ का प्रमुख स्टेशन चार बाग यहाँ से कुछ मिनटों का ही सफर है अतः सब अपने सामानों को व्यवस्थित करने में जुट गए.

आखिरकार ट्रेन नम्बर वन प्लेटफार्म पर आ ही गई. सफर के अंत में सही-सलामत गन्तव्य पर पहुँच न जाने किस आस्था से मन कृतज्ञता से कृतज्ञ हो उठा. दूसरे ही क्षण यह समस्या सिर उठाकर पूछने लगी कि चाची ने अपने जिन सम्बन्धी को मुझे लेने भेजा है उन्हें मैं पहचानूँगी कैसे? मैं तो उनसे परिचित हूँ नहीं, बस नाम ही जानती हूँ और यकायक उन महानुभाव के नाम और चाची के मोहल्ले के नाम ने गुदगुदी पैदा कर दी. दोनो नामों को यदि मिला दिया जाए तो क्या सटीक हैं. चाची के मोहल्ले का नाम है 'बारूदखाना' और उन सज्जन का 'जंगबहादुर'. बारूद खाना वाले श्री जंगबहादुर जी.

इस हल्के-फुल्के मूड में गा ी से उतर अपने लेने आने वाले सज्जन के लिए इधर-उधर नज़रे घुमा रही थी कि पीछे से आवाज़ ने मेरे कंधे का स्पर्श किया. घूम के देखा कि जिन महोदय से सीट का आदान-प्रदान किया था वो ब े अस्त-व्यस्त-से, क्रोध से भभके हुए ख े थे. परेशान से वो मुझे सम्बोधित कर बोले _'आपने मुझे कहाँ भेज दिया? मेरा सब सामान और पैसा चोरी हो गया है.'

मैं स्तम्भित रह गई. जहाँ एक ओर उन महानुभाव के साथ हुए वाक्ये से दुखी थी वहीं यह विचार कि मेरी अशांति की चेतनायुक्त धारणा निर्मूल नहीं थी; सामान की तो ऐसी-तैसी, यदि कहीं मेरी इज्ज़त पर हाथ डाल जाता...यह आशंकामात्र ही बदन को पत्ते की तरह कँपकँपा गई. सोच का घो ा यहीं नहीं रुका, आँखों के आगे से अखबार की सुर्खी गुज़र गई _'एक अपरिचित, अप्रमाणित महिला का शव रेल-ट्रैक के पास पाया गया.'

आँखें अपने जब े खोले भौंक रहीं थीं और होठ प्रार्थनाभरे स्वर में बुदबुदाए.

यह वाक्या शीशे की किरच की तरह अंदर धँसकर टीस रहा था. मस्तिष्क विचारों की रुई धुन रहा था. मानव हर घटित हुए के लिए आत्मसंतोष के वास्ते एक कारण खोज लेता है, भले ही वह कारण सही न हो. क्योंकि कारण खोजने से वह कुछ खो जाने के बाद कुछ पा जाने जैसा महसूस करने लगता है.

सबसे ब ा प्रश्न मुँह बाए ख ा था कि किसके सितारे ज्यादा प्रबल थे? मेरे बचाव के या उसकी दुर्घटना के? हम दोनो ही मुँह बाए एक-दूसरे को देखते हतप्रभ ख े थे.

***

विकल्प

डॉ शशि अरोरा

मेरे सामने तीन विकल्प हैं -
एक तो यह -
कि मैं उन देवियों का स्मरण करते हुए
समर्पण कर दूँ,
घुटने टेक दूँ,
उस व्यवस्था के आगे
जिसे पुरुष ने
अपने अहं की संतुष्टि के लिए बनाया है।
जिसमें त्यागे जाने पर,
जलाए जाने पर,
सती प्रथा पर,
विधवा जीवन के अंधविश्वासों पर बलि बनकर
चढ़ जाऊँ और इन सब के बदले
देवी कहलाऊँ और पूजी जाऊँ
और फिर उपेक्षिता के रूप में
किसी खण्डकाव्य या महाकाव्य में स्थान पा
सहानुभूति पाऊँ।

दूसरा यह -
कि मैं विद्रोह कर लूँ
और इन टूटी वैसाखियों को त्याग
अबला मिटकर सबला बन जाऊँ,
क्योंकि
सबकुछ जानते-बूझते
परिणामों से घबराकर
आँखों पर पट्टियाँ बाँध
अँधों की तरह दिशाहीन चलना
और गांधारी की तरह जीना
मुझे स्वीकार नहीं।
पानी पर पगडं ी बना
टूटते हुए क्षितिज तक पहुँचने पर भी
अँधेरा ही मेरे हाथ आएगा?
तो क्यों न मैं
उस सुबह की धूप से प्रेरणा ले
अँधेरे को चीरकर,
क्षितिज पर एक नया सूरज उगाऊँ
और एक नई सुबह दूँ
इन टूटी बैसाखियों को,
क्योंकि
इनका दर्द अब मुझसे सहा नहीं जाता!

और, तीसरा यह -
कि वक्त की देहरी पर,
अंधविश्वास तथा व्यवस्था के
भुतहे मकानों के संशय से मुक्त
सारा शहर निश्चिन्त सोता रहे
मैं आत्महत्या कर लूँ
क्योंकि
मातम की तरह ठहरकर,
मैं व्यवस्था के बदलने का इंतज़ार
और नहीं कर सकती।

***

नौकरानी

लघु कथा

सूर्यकांत नागर

अरसे बाद शहर लौटा था। रास्ते में रमण मिल गया। इधर-उधर की बातें होती रहीं। रमण ने घर आने को कहा तो सहसा मुझे उसके पुराने नौकर नारायण की याद हो आयी। बहुत ही ईमानदार, निष्ठावान और हँसमुख नौकर है। मेहमानों की सेवा करना कोई उससे सीखे। मैं जब भी रमण के यहाँ जाता, नारायण पूरे मन से आवभगत करता। इसीलिए पूछ बैठा, 'नारायण के क्या हाल-चाल हैं?'

'उसे तो मैंने निकाल दिया।'

'क्यों? वह तो तुम्हारे लिए बहुत उपयोगी था। रोटी-पानी, झाड़ू-पोंछा, भाँडे-बर्तन, हाट-बाज़ार सभी कुछ तो करता था।' आश्चर्यचकित हो मैंने पूछा।

'अब उसकी जरूरत नहीं रह गई थी। शायद तुम्हें पता नहीं, पिछले दिनों मैंने शादी कर ली है।'

****

एक अनुभूति

डॉ. अम्बाशंकर नागर

तुमसे मिलकर
अकसर मुझे
ऐसा महसूस हुआ है :
कि जैसे सुगंध की कोई लहर
मुझे छू गई है -
और मेरा अंग-अंग
सुरभित हो उठा है !

तुमसे मिलकर
अकसर मुझे
ऐसा महसूस हुआ है :
कि एक नया अलोक
मुझमें भर गया है -
जिससे मेरे दिल
और दिमाग का
अणु-अणु जगमगाने लगा है !

तुमसे मिलकर
अकसर मुझे
ऐसा महसूस हुआ है :
कि तुमने मेरे
जिस अंग को स्पर्श किया,
वह सोने का हो गया है -
और शेष अंग
आकुल है
स्वर्णिम बनने को !

तुमसे मिलकर
अक्सर मुझे
ऐसा महसूस हुआ है :
कि जैसे सुरतरु
मेरे गुलदस्ते में उगा है -
और कामधेनु
तथास्तु कहती
मेरे द्वारे ख ी है !

तृप्त-काम हूँ मैं !!
तुमसे मिलकर
अक्सर मुझे
ऐसा महसूस हुआ है ! ☺☺☺

हाइकु

आचार्य रघुनाथ भट्ट

छाए बादल
ललचाते हैं मोर
धरती प्यासे।

कूकी कोयल
मँजरियाँ महकीं
आया वसन्त।

नील कमल
शांत सरोवर में
सान्ध्य दीप-सा।

साँझ की चील
उ ी अन्तरिक्ष में
डैने फैलाए।

आकाश फैला
सागर लहराया
धरती सिमटी।

काम हैं काले
मज़हब उजले
कैसे हों प्यारे।

भँवरलाल
चूसा फूलों का रस
कितनी ठौर।

चीरहरण
थी कृष्णलीला तब
ब्यूटी है आज।

नादान बेटा
वात्सल्य के नभ में
चौथ का चाँद।

भारतीयता
तनी तलवारों में
गीता गाती है। □□□

प्रिय हर्षवर्धन

डॉ. परेश

प्रिय हर्षवर्धन,

तुमने दो प्याली चाय से कम रिश्वत मुझे कभी नहीं दी, फिर भी मैं तुम्हें हर बार यही कहता रहा कि तुम्हारे नाम में एक पौराणिक गन्ध है और कोई भी फिल्म प्रोड्यूसर तुम्हारे इस नाम से आकर्षित नहीं हो सकता। नया जो मो आया है उसके अनुसार फिल्मों में शम्मी शम्मी ही रहता है और आशा आशा ही। खैर, आज तुम आसाम के चाय बागानों में सुखी हो। भाग्य की बात है। तुमने मुझे चाय की रिश्वत दी और जीवन में तुम्हें चाय की ही नौकरी मिली--कहूँ मालिकी मिली। यहाँ तो अध्यापक होते हुए भी लगता है, हम दुकानदार हैं और केवल वाणी का व्यापार करते हैं।

मानता हूँ, चण्डीगढ़ से आया हुआ पत्र तुम्हें अपशकुन-सा लगेगा, यद्यपि तुम्हारी सारी क वी-मीठी स्मृतियों का स्त्रोत इसी नगर में है। चण्डीगढ़ से तुम्हें इसलिए घृणा है ना कि मैं यहाँ हूँ और ल कियों से घिरा हूँ। तुम क्या सोचते हो, मैं इस कन्या-पुत्री-पाठशाला में सुखी हूँ? हिन्दी में एम.ए. करवाकर तुम मुझे एयर-फोर्स में भर्ती करवाने की सोच रहे थे क्या? अब भी क्या बिग ा है? अरे, तुम मैनेजर हो तो मुझे गोडाउन-कीपर ही रख लो..खैर छो ो। मेरे इस पत्र को कहीं तुम आवेदन-पत्र मत समझ लेना।

श्रीमतीजी की आँख लग गई है तो लिखने की मेज़ पर आ बैठा हूँ। तुम हँसोगे इस मेज़ की याद करके। लेखक बनने के लिए यह मेज़ बनवाई थी। दरअसल, यह तुम्हारी सोहबत का असर था। तुम्हारे जाने के बाद तो चण्डीगढ़ से नयी कविता ही चली गई। इक्के-दुक्के गीतकार बचे हैं, जो हुक्का पीते हैं और काफी-हाउस में बैठते हैं। तुम्हारे जाने के बाद यही होना था।

तुम थे, तो काफी-हाउस था, कन्याएँ थीं, कविताएँ थीं। अब वह चण्डीगढ़ कहाँ। हाँ, इसमें शक नहीं कि आज भी उसका-सा चौ ा आकाश, तुम वहाँ पहा की चोटी पर बैठ कर नहीं पाओगे। उत्तर में शिवालक की श्रेणियाँ क्रमशः उलझती हुई आदिम रहस्यों-सी गूढ़ होती चली गई हैं। अक्सर बादलों से ढ़की चोटियाँ खुलती नहीं और खुलती हैं तो अद्भुत होते हैं धूप-छाँव के खेल। जैसे आदम और हव्वा के युगनद्ध..मीलों लम्बी मेघ-शशकों की छायाकृतियाँ..हरी-नीली मुस्कानों से भीगे हुए दिशाओं के अधरोष्ठ..निरन्तर ही रिसता हुआ पूर्वी-पवन के हिम-कण्ठों मे कोई अभिसरण-गान..।

तुम, शायद, मेरी छायावादी बुद्धि पर लानत भेजोगे। परन्तु मित्र, मित्रता में क्या छायावाद और क्या इलाहाबाद..। अरे, पंत और महादेवी को जो मैं घोट-घोटकर पी गया था वह चुप रहने के लिए?..सुनो..पर ठहरो..ठंड लग रही है, कोुछ ओढ़ लूँ..। हाँ, तो, मैं क्या कह रहा था..दुशाला लेने गया था पर वह श्रीमतीजी ने ओढ़ रखा है..लगता है इस बार बर्फ जल्दी ही गिरेगी। रात में जब कभी आसमान साफ होता है, तो, कुछ नीले रहस्यों से पहाि याँ उजली हो जाती हैं। जगमगाती हुई कसौली अन्धकार के अंतराल इन्द्रपुरी-सी अधर तैरती है। जू े में उलझी हुई बाले-सी 'डिक्साई' शिवालक की पिछली पर्तों में इन्द्रधनुष-सी उगती है और फिर डूबती है इस जादू के आवर्त्त में अक्टूबर की रात..। होती है समर्पित, शहर के प्रतिबिम्बों को लिए हुए झील की उद्दाम हरहराती पछा ..।

हम एक ज ता को परिवर्तन का नाम देकर पचाते रहते हैं और स्वयं को इस भ्रम से भुलाते रहते हैं। कितना यांत्रिक है यह नगर--सीमेंट और लोहे का। इसमें क्या कुछ बदला है..। लगता है, सदियों से चलता हुआ एक शहर अँधेरे के गर्भ में डुब गया है। कितनी है घुटन, सील! इसी गर्भ में हलचल करके हम लोग संतोष पाते हैं, प्रगतिशील होने

का दावा करते हैं, मुझे यों कहना चाहिए हर्षवर्धन, प्रकृति की एक आदिम ज ता स्थिरता वैसी-की-वैसी है। केवल हमारा बोध बदला है। एक अपरिहार्यता को हमने कई प्रकार से पचाने का अभिनय किया है। दीवारों पर उस परिवर्तन के सूचक कलेण्डर लगाए हैं और स्कूलों में नामों के रजिस्टर। आज ऊष्मा की जगह कोई सुषमा आ गई है। कल नरेश की जगह राकेश। सृष्टि के अवतरण के समय पायी हुई खुराक की हम केवल जुगाली करते हैं। रोज यही पढ़ाना। वैसे ही किसी आचार्य को बाहर से बुलाना। वही हिन्दी-साहित्य और वही कन्या-पुत्री-पाठशाला. . ।

थियेटरों के ग्रीन-रूम में आज भी पर्दे नहीं हैं और कप े बदलती हुई नंगी ल कियों को, होस्टलों में आई हुई ल कों की जंगली और बद्हवाश पीढ़ी आज भी झा ियों में छिपकर देखती है हमेशा की तरह।

कहने को नया वर्ष लग जाता है, पर, मैं कहता हूँ काल के जब े फिर एक फेनदार जुगाली लेते हैं। एक ब े पे के नीचे जैसे यह काल-महिष आँखें झींमते हुए बैठा है और उसी आदिम ढ़ंग से जुगाली कर रहा है। फिर भी कितनी ताज़गी से सारे रेस्तराँ और थियेटर भरे हैं। वर्सिटी शाप्स पर वैसी ही भी ; छात्रों की आँखों और आदतों में वैसी ही शरारत। दिन-पर-दिन देह-मुद्राओं को अधिकाधिक नंगा करती हुई ल कियों की वेश-भूषाएँ। सारा क्रम अपनी आदिम अवस्था को लौट रहा है। जाने कौन, कहाँ छुआ हुआ अपना सारा प्रदर्शित वापस समेट रहा है। तुम वह ईलियट की कौनसी कविता सुनाया करते थे। 'ईस्ट क्रोकर' या ऐसा ही कुछ. .'अँधेरे की अँधेरे पर फिसलन. . ।'

क्या होगा कविताओं से? तेजी से सब उस मरण-द्वार की ओर भाग रहे हैं, बेखबर। छात्राओं में रोमांस जगाते-जगाते सभी आचार्य हो गए हैं बूढ़े। तुम्हारा डर था कि इस माहौल में कहीं मेरा यौन-परिवर्तन ना हो जाए। तुम्हारी आशंका सच नहीं निकली। तुम्हारी भाभी के तीसरी संतान हुई है। नाम रखा है 'निन्नी'। श्रीमतीजी भी मेरी तरह हिन्दी-वादी हैं। अपने आठवें-नौवें महीने में भी 'मृगनयनी' पढ़ती रहीं। परिणाम यह निकला कि बच्ची ब ी हृष्ट-पुष्ट पैदा हुई। नाम रख दिया निन्नी।

तुम्हें एक ट्रेजेडी बताऊँ। शायद तुम्हें प्रसन्नता हो। जिस 'निन्नी' के लिए हमने इतनी भाग-दौ की थी छात्र-जीवन में, अन्ततः उसकी शादी हुई अरने भैंसे से ही।

तुम्हें याद होगा, वह काला-सा मोटा ल का। उस अरने को तुम इस जीवन में कभी भूल पाओगे, यह तो मुश्किल है। वह आज तक रिसर्च-स्कालर है और थीसिस सबमिट नहीं कर पा रहा है। जबकि दनादन 'मृगनयनीजी' हर साल अरने पर अरने भेंट किए चली जा रही हैं। मुझे पता है, इस कल्पना से ही तुम सिहर जाओगे। तुम्हारे लिए तो वह नयी कविता थी। मैंने भी तो उसकी आँखों पर एक कविता लिखी थी। तुम्हें याद है न? 'आह! ये पलकें. .यह रत्यन्तर का मथित मद - हलाहल - क्षितिज मुँद रहे हैं. . ।' तुम्हारी दृष्टि में यह छायावादी कविता थी। परन्तु मित्र! तुम और मैं नयी-पुरानी के झग े में प े रहे और वह मोटा इस ल की को ले भागा। तबसे तुम मैनेजरी करते हो और मैं अध्यापकी। फिर भी सोचो तो सही, आखिर उस हब्शी में ऐसा क्या था जिस पर वह ल की मर मिटी? कितनी बदबू आती थी उसके शरीर से। कहाँ वह हब्शी और कहाँ वह तराशी हुई कर्पूरगुटिका-मूर्ति। पता है, वाणभट्ट ने क्या लिखा है?. .

तोता लेकर जो चमार-कन्या राजा के दरबार में गई तो उसने कहा, "निश्चय ही स्पर्श दोष के भय से इसे ब्रह्मा ने बिना छुए बनाया है। वरना इसका लावण्य इतना निर्दोष क्योंकर होता? स्पर्श-दूषित काया की कान्ति ऐसी नहीं होती। अस्पर्श्य होने से यह मनोहर मूर्ति असुर - श्री की भाँति खेद प्रगट कर रही है. . ।"

'मृगनयनी' तो असुर कुल की नहीं थी, परन्तु कितना मारक होता है इन 'इन्टेलेक्चुअल्स' का फ्रस्ट्रेशन! वरमाला डाली भी तो उस 'अरने' के गले में...। दरअसल वह प्रेम करती थी हम दोनों से..।

ऐ भाई! सुनो. श्रीमती जी करवट बदल रही हैं, अतः मैं यह खत यहीं खत्म कर रहा हूँ। उन्होंने मुझे लिखने की मेज़ पर बैठे हुए देख लिया तो, समझो खैर नहीं। समझेंगी, मौका देखकर मैं कोई प्रेम-पत्र लिख रहा हूँ। वैसे मित्र! जब से संगम देखा है, हमारे दाम्पत्य-जीवन में एक दरार आ गई लगती है। भूल से नहाते वक्त उस दिन वह पंक्ति निकल प ी, 'तुम्हारा प्रेम-पत्र पढ़कर..।' चाय मेज पर रखने की बजाय उन्होंने पटक दी। तब से मेरे दिमाग में भी एक की ा घुस गया है कि हर पत्नी अपने मैके वाली पेटी में कोई-न-कोई प्रेम-पत्र अवश्य छुपाए रहती है।

तुम भी सावधान रहना। कहीं यह पत्र तुम्हारी श्रीमतीजी के हाथ में न प जाए, वरना झग ा ख ा हो जाएगा। बरस बीत गए इन बातों को, फिर भी उन्हें पता लग गया कि हम किसी ऐसी ल की से प्रेम करते थे जो उनसे खूबसूरत थी तो बस समझ लो।

हाँ, एक आयडिया आया है। कहीं खत तुम्हारी बीबी के हाथ में प जाय तो कहना कि यह एक कहानीकार-मित्र की खत के स्टाइल में एक कहानी है। सुधारने के लिए भेजी है। वैसे भी, सोचता हूँ, कहानी के नाम से यह खत कहीं छप जाय तो क्या नुकसान है? इसमें कहानी के 'पाँचों तत्व' तो हैं नहीं, अतः यह 'नई कहानी' की गिनती में आ सकती है। तुम सुधार कर एक-दो तत्व और कम कर लेना जिससे यह 'अ-कहानी' बन सके तो और भी अच्छा।

मैं जानताहूँ, तुमने लिखना-पढ़ना छो दिया है, परन्तु कई लेखक-सम्पादक तुम्हारे दोस्त हैं। भाई! यह कहानी कहीं छपवाओ तो जाने। लोग समझते हैं, हिन्दी टीचर केवल आलोचक हो सकता है, लेखक नहीं। इस धारणा को बदलने का श्रेय केवल तुम्हें मिल सकता है। 'नयी-पुरानी' का झग ा तुमने भी तो थो ा-बहुत सुना होगा। मैं नहीं समझता, कहानी 'नयी' और 'पुरानी' क्या होती है। अरे, भाई, सीधी-सी बात है, कि कोई कहानी है तो वह कहानी है। इसमें 'नई-पुरानी' क्या..?

तुम भी सोचना और इस साल चाय मत भेजना। पिछले साल वाली ही खत्म नहीं हो रही है।

तुम्हारा,
गोवर्धन

डाक का पता -
द्वारा सुश्री वृजबालाजी, मुख्याध्यापिका,
कन्यापुत्री पाठशाला, चण्डीगढ़

*

मृत्युशैय्या पर प े पति ने ब ी भावुकता से पत्नी से कहा - 'प्रिय, मुझे क्षमा कर देना। पूरा जीवन भर मैं तुम्हें धोखा देता रहा। पूरी ज़िन्दगी कई औरतों के साथ मेरे सम्बन्ध रहे और तुम्हें हमेशा यही कहता रहा कि मैं तुम्हारे सिवा किसी और को नहीं चाहता।'

पति की बात सुन कर पत्नी थो ी देर तो शांत रही, फिर धीरे से बोली - 'मुझे सब मालूम था, लेकिन तुम यह मत समझना कि मैंने तुम्हें इसी कारण ज़हर दिया है।'

☺☺☺☺☺☺☺☺

शत्-शत् नमन करूँ मैं

डॉ. सुशीला गुप्ता

तुझको या तेरी भूमि, गिरि, वन को नमन करूँ मैं,
मेरे प्यारे देश देह या मन को नमन करूँ मैं
किसको नमन करूँ मैं भारत! किसको नमन करूँ मैं?
भू के त्रिभुजाकार चित्र का नाम नहीं है भारत
ग्राम, नगर, पर्वत, नदियों का नाम नहीं है भारत।
जहाँ ज्ञान के दीपक जलते वही हमारा प्यारा देश
जहाँ स्नेह की गंगा बहती वह है जग से न्यारा देश।
जहाँ प्रकृति भी शिक्षा देती बदल-बदलकर अपना वेश
उसी जग के वासी जग को देते रहते नव सन्देश।
जो विदेश में भी जन-जन को प्रेम-सूत्र में बाँध रहे हैं
निज मातृभाषा, संस्कृति रक्षाहित जो सतर्क हो जाग रहे हैं।
जो अपने और पराए का संकीर्ण भाव नहीं लाते हैं
सब जग को परिवार समझ जो अपना प्यार लुटाते हैं।
'वसुधैव कुटुम्बकम्' महामंत्र जो सारे जग को पढ़ा रहे
मातृभूमि के चरणों पर निज भाव-पुष्प हैं चढ़ा रहे।
अपनी माटी की आये सुगंधि यह सोच वातायन खोल रहे
ईर्ष्या, द्वेष के खारी जलधि में अमृत रस हैं घोल रहे।
वे हैं जननी से दूर किन्तु वही माँ के राजदुलारे हैं
वे सपूत ही तो भारत माँ की आँखों के तारे हैं।
ऐसे वीर सपूतों का नित नूतन अभिनन्दन हो
भाव-पुष्प अर्पित कर उनका जग में शत्-शत् वन्दन हो।
ऐसे मातृ-भक्त भाइयों को शत्-शत् नमन करूँ मैं
ऐसी मातृ-भक्त बहनों को शत्-शत् नमन करूँ मैं।

*

बेनाम रिश्ता

निर्मल सिद्धू

धरती के सीने पर
बिना उगाए ही
जिस तरह कभी कोई फूल
पत्थरों से निकल
मुस्कुराने लगता है
उसी तरह
मानस जीवन की सतह पर
कभी कोई रिश्ता
स्वयं ही उभर कर
खिलखिलाने लगता है
जिसे हम कोई नाम नहीं दे सकते
कोई रूप नहीं दे सकते
इस बेनाम रिश्ते को
न चाहत की कोई चाहत होती है
न ज़रूरत की कोई ज़रूरत होती है
ये रिश्ता, न स्वर्ग से उतरा
न अग्नि के फेरों से निकला
न लट्टू के धागों से बँधा होता है
ना ही यह किसी
समझौते से उपजा होता है
बस यह महसूस होता है
अब, ऐसे ही रिश्तों की तमन्ना है
इन्हीं की ज़रूरत है
इन्हीं के हम मुन्तज़िर हैं।

*

नियति

सुभाषिणी खेतरपाल

जीवन में हम अपने भविष्य को सँवारने के लिए इतने व्यस्त रहते हैं कि वर्त्तमान को भूल जाते हैं। बच्चों को उज्ज्वल भविष्य और आर्थिक सुरक्षा देने के लिए केवल काम ही काम पर ध्यान केन्द्रित रहता है। जिनके लिए हम दिन-रात खटते रहते हैं उन्हीं की भावनात्मक आवश्यकता पर हमारा ध्यान ही नहीं जाता; ध्यान जाता भी है तो तब तक बहुत देर हो चुकी होती है। वैसे भी हम छोटी-छोटी बातों को जीवन में महत्व नहीं देते, इसी कारण हम छोटे सुखों का आनन्द भी नहीं उठा पाते। लेकिन जीवन में एक समय ऐसा आता है जब वही बातें हमारी यादों का सम्बल बन जाती हैं।

बच्चों की प्यार-भरी मनुहार, उनके हाथों का स्पर्श, चंचल चितवन, आपको बाँहों में भरने का उनका प्रयास, उँगली पक कर चलने की जिद, बाँहों को तकिया बनाकर सोना, व्यक्ति को सातवें आसमान पर पहुँचा सकता है। लेकिन व्यक्ति को फुरसत कहाँ है? तभी कुछ ऐसा घटता है कि सब कुछ बदल जाता है और तब पछताने के अतिरिक्त कुछ हाथ नहीं लगता। यही आधार था उस कहानी का जो कल मैंने कक्षा में बच्चों को पढ़कर सुनाई थी। कहानी का कथ्य एक स क दुर्घटना थी। प्रस्तुतीकरण इतना मार्मिक था कि कहानी सुनकर कक्षा में थो ी देर के लिए सन्नाटा छा गया। लेखक ने भूमिका भी बहुत अच्छी बाँधी थी।

एक दम्पत्ति की बच्ची स क दुर्घटना का शिकार हो जाती है। शव को दाह-संस्कार के लिए ले जाने के लिए लोग तैयार ख े हैं और बच्ची के पिता कमरे में बाल-कथा की पुस्तक खोले एक कहानी ब ी ऊँची आवाज़ में पढ़ रहे हैं। उनकी दिवंगत बेटी कुछ ही दिन पहले अपनी नई पुस्तक लिए ब े उत्साह से उनके पास आई थी। उसकी इच्छा थी कि वो उसे उस पुस्तक में से कोई अच्छी-सी कहानी पढ़कर सुनाएँ। पर उस समय वो अपने काम में इतने व्यस्त थे कि उन्होंने उसे टाल दिया। अब जब उनकी बच्ची ही दुनियाँ में नहीं रही तो वे उसकी अंतिम इच्छा पूरी कर रहे हैं...जाने स्वयं को तसल्ली देने के लिए या बेटी की आत्मा की शांति के लिए...

अभी मैं इस कहानी की गिरफ्त से निकल भी नहीं पाई थी कि एक और स क दुर्घटना ने मुझे हिलाकर रख दिया।

कल रात ही रेखा का फोन आया था। मैं चौंक गई थी। सोचा रेखा क्यों फोन करेगी मुझे! मैं उस स्कूल में हाल ही में ट्रांसफर होकर आई थी। स्टाफ में अभी सीमित पहचान ही हुई थी। रेखा से मेरा सम्बन्ध 'हाय, हैलो' तक ही था; तभी फोन पर आवाज़ सुनाई दी, 'तुम आशा से कब मिली थी?'

सुनते ही मुझे एहसास हुआ कि ये वाली रेखा तो मेरे पुराने स्कूल की टीचर थी।

मैंने सहज भाव से उत्तर दिया, 'अभी करवाचौथ पर ही हमारी बात हुई थी। क्यों क्या बात है?

रेखा ने मुझे बताया कि आशा नहीं रही। सुनते ही फोन मेरे हाथ से छूट गया। स्वयं को नियंत्रित करते हुए फोन फिर से हाथ में लेकर पूछा, 'क्या मतलब?'

तब उसने मुझे विस्तार से बताया कि कल स्कूल से घर लौटते हुए एक स क दुर्घटना में उसकी घटना-स्थल पर ही मृत्यु हो गई थी। ज्यादा कुछ पूछने का मन नहीं किया।

कुछ समय के लिए मैं अचेत-सी रही मानसपटल पर आशा के साथ उस स्कूल में बिताए तीन साल चल-चित्र की भाँति उभरने लगे। मैं उस स्कूल में ट्रांसफर होकर गई थी

और आशा की नई नियुक्ति थी। इस हिसाब से हम दोनों ही उस स्कूल में नए थे। अतः उम्र का अन्तराल होने के बावजूद हम दोनों का परिचय बढ़ते-बढ़ते अन्तरंग मित्रता में बदलता गया। बी.एड. करने के बाद वह अपने चाचा के पास दिल्ली आ गई थी। उसका रहन-सहन इतना सादा था कि यह अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता था कि वह अत्यन्त सम्पन्न परिवार से होगी। चाचा का संयुक्त परिवार था। चाची की बहुएँ तो अपनी सास के सौजन्य से घर के काम-काज से मुक्त थीं, परन्तु आशा नौकरी लगने पर भी चाची का हाथ बटाने का भरसक प्रयत्न करती।

हर छुट्टी में आशा घर दौ ी चली जाती। उसे पता था मुझे पिन्नियाँ बहुत पसन्द हैं; सर्दी में जब भी घर जाती अपनी मां से मेरे लिए पिन्नियाँ बनवाकर लाती। अपनी मेज़ पर पिन्नियों का डिब्बा देखकर मैं समझ जाती कि आशा घर से वापिस आ गई है। अत्यन्त भावुक और संवेदनशील थी आशा। एक वही अविवाहित थी हमारे स्टाफ़ में। इसलिए उसकी शादी को लेकर अक्सर कोई न कोई पूछ ही लेता था। कइयों की वैसे भी आदत होती है कि जहाँ कहीं शादी लायक ल की या ल का देखा वहीं जोि या जु ाने लगती हैं। ऐसे में आशा बहुत असहज हो उठती थी। उसे हमेशा एक बात का गिला रहा कि ल कियाँ ल कों के बराबर क्यों नहीं समझीं जातीं। उसकी खीझ को दूर करने के लिए उसकी माँ कहा करतीं, 'नहीं तुम तो ल कों से बढ़कर हो।'

एक दिन स्कूल पहुँचते ही वह सीधी मेरे कमरे में आई और बोली, 'कल ल के वाले देखने आए थे।' इतना कहते ही सकुचाकर कमरे से बाहर हो गई। इस तरह देखते-देखते उसकी शादी हो गई। बहुत रूप निखरा था। खुश भी बहुत थी। इसी तरह चार मास बीत गए थे। एक दिन फिर उसने एक बात कही जिसे सुनकर मैं ज़रा भी चौंकी नहीं थी। अस्वाभाविक नहीं लगी थी। मुझे उससे ऐसी ही आशा थी। अभी तक दोनों सहवास-सुख से दूरी बनाए थे। उस दिन मैनें उसे एक अच्छा-खासा लेक्चर दे डाला था; जिसका असर भी लगता है हुआ था। अगले ही वर्ष वह एक प्यारी-सी बेटी की माँ भी बन गई थी। इसी बीच मैं पदोन्नति के साथ ट्रांसफर होकर दूसरे स्कूल चली गई। हम लोगों के बीच रोज़ का सम्पर्क टूट गया। फोन पर ही बात हो जाया करती थी। अपने देवर की शादी का कार्ड भी देने आई थी। तभी शादी में आखिरी बार उससे मिली थी। ब्यूटी-पार्लर से तैयार होकर आई थी। जेवरों से लदी, दमकता चेहरा। मैं ज्यादा देर रुक नहीं पाई थी। आज जहाँ एक ओर उसका वही रूप रह-रहकर मेरी आँखों के सामने घूम जाता है वहीं दूसरी ओर छोटी, फूल-सी बच्ची बिना माँ के कैसे रहेगी, का प्रश्न-चिन्ह....

*

गज़ल

श्याम सुंदर सूरी

आज खुदा खैर करे हूरे गुलमा बालाए बाम पर आई है,
हम तो आगे ही मर चुके हैं न जाने किसकी मौत आई है !
न ग़में फ़ुरकत में त पना सीखा हमने, न वसले सनम की जानब नज़र दौ ाई है,
ऐ कज़ा की घ ी ज़रा ठहर भी जा, उनके हज़ाब में जरा सरकश आई है।
या इलाही यह क्या माजरा है कि मौत हियात से टकराई है !
लो हँसकर उस महजबीं ने किया यह इशारा,
आज इधर आ भी जाओ घर में फ़कत तन्हाई है।
यकीन नहीं आता कि यह सच है या मेरे ख्वाब की ताबीर है !
बहरेहाल सूरी ने किसी महबूबा के साथ जिन्दा रहने की कसम खाई है।

*

मेहमान

डॉ. उषादेवी कोल्हटकर

मेरा नाम है फ्लफी। मैं एक खिलौना हूँ। एक खूबसूरत, गोल-मटोल, हर बच्चे को मोहित करने वाला 'टेडी बेअर'। किंडरगार्टन क्लास की फुर्तीली अध्यापिका मैरी बेथ ने अपने दो साल के बेटे के लिए मुझे खिलौनों की दुकान से खरीद कर घर लाने की मेहरबानी की। एक दिन मैरी बेथ ने तय किया कि मैं हर छात्र के घर दो दिन का मेहमान बनकर जाऊँगा। घर में आए हुए मेहमान की आवभगत कैसे की जाती है, यह बात बच्चों को सिखाने के मकसद से यह उपक्रम शुरू हुआ। उपक्रम का साधन मुझे बनाया गया और हर नन्हे बच्चे के घर मैं मेहमान बनकर जाने लगा।

रेचल के घर जाते ही उसने मुझे किचन-टेबल पर बिठाकर, मुझसे बातें करते-करते, माँ की मदद से केक बनाया और मेरा जन्मदिन न होते हुए भी मेरा जन्मदिन मनाया। मैं रेचल के खिलौनों के साथ खेला। उसकी गोद में बैठकर पूरे घर में घूमता रहा। आँगन में बैठा। कैण्डी और बिस्कुटों की दुकान तक घूम आया। रात को रेचल के पविार के साथ बैठकर खाना खाया और सोने से पहले रेचल के कमरे में, 'The bear went over the mountain' यह गीत गाते-गाते रेचल का हाथ पक कर नृत्य भी किया। दो दिन के बाद स्कूल जाने से पहले, रेचल की माँ ने, मैरी बेथजी द्वारा दी हुई कॉपी में, मैंने और रेचल ने दो दिनों में क्या-क्या किया, यह लिखकर दिया और परिवार में सबको 'बाय' कहकर मैं स्कूल लौट आया।

क्रिस्टोफर के घर में गिनती दोहराने वाला सफेद खरगोश मुझे बेहद पसन्द आया। सोने से पहले सबने मिलकर, बाइबिल पढ़कर, प्रार्थना करते हुए जब मेरे नाम का खास जिक्र किया तब तो मैं सचमुच रो प ा। स्कूल लौटने से पहले क्रिस्टोफर ने मेरे कान में कहा, 'मैं तुम्हे मिस करूँगा फ्लफी' तो मुझे अच्छा लगा।

अड़िना ने तो कमाल किया। उसके घर जाते ही उसने मुझे अपनी बार्बी गु िया के नजदीक बिठाया, जिस बार्बी गु िया को छूने तक की किसी को इज़ाज़त नहीं थी। मुझे बाय कहते वक्त अड़िना ने मुझे आलिंगन देकर प्यार से चूम लिया और थैली में बैठकर मैं चला गया समृद्ध के घर।

समृद्ध के पास ढ़ेर सारे खिलौने थे। मम्मा-पापा, ला -दुलार करने वाले नाना-नानी थे। जब वह दो साल का था, तब से उसने सँभालकर रखे हुए, अपने सबसे प्यारे टेडी बेअर के साथ मेरा परिचय कराते हुए कहा, 'यह नन्हा टेडी बेअर उसके साथ फ्रँकफर्ट, लन्दन, दिल्ली और दार्जिलिंग तक घूमकर आया है।' हम दोनो ने खि की में बैठकर गिरती हुई बर्फ देखते हुए कई बातें कीं। दूसरी रात ड़ाइंग-रूम में, सोने का इन्तजाम करने के लिए सोफा-कुर्सियाँ एक तरफ हटाकर कलीन पर ब ा-सा गद्दा बिछाया। गद्दे पर लाल रंग की छतरी खोलकर रखी और हमारा खेमा बन गया। हम दोनों ने और समद्ध के सारे खिलौनों ने वह रात खेमे में बितायी। इस कैम्पिंग का हम दोनो को ब ा मजा आया। दो दिन हँसी-खुशी में बीते और थैली में बैठकर मैं स्कूल लौट आया।

सुमीत की तो बात ही कुछ और थी। उसने मेरे लिए टी-शर्ट और गुब्बारा खरीदा। साइकिल पर बिठाकर मुझे जी भर के घुमाया। कार में बिठाकर मेरी तस्वीरें खींची। रात को सोने पहले, मेरे दाँत नहीं थे, फिर भी नया ब्रश लेकर मेरे दाँत ब्रश करने का नाटक करते हुए, सुमीत खिलखिलाकर हँसता रहा। बिस्तर पर लेटकर, रजाई के साथ जी भरके मस्ती करने के बाद उसने मुझे एक मजेदार कहानी पढ़कर सुनाई। कौन-सी बास्केट-बॉल टीम अच्छा खेलती है, उसे हॉकी खेलना क्यूँ पसंद है, ब ा होने के बाद वह क्या बनेगा; ऐसी

न जाने कितनी सारी बातें करते हुए मुझे सीने से भींचकर, जब वह नन्हे फरिशते की तरह सो गया, तब उसकी कुछ ज्यादा ही ममता से सचमुच मेरा जी घबरा गया। सुमीत की माँ रेडियो सुन रही थी। कोई भारतीय गायक, भारतीय भाषा में गा रहा था, 'हमसे अच्छी फरिश्तों की बसर क्या होगी...' मैं स्पर्श की भाषा समझ सकता हूँ। उस गायक के शब्द-स्पर्श में खुशी, राहत, तृप्ति; ऐसे मिले-जुले सुखदायी भावों को महसूस किया और सुमीत का दृढ़ आलिंगन सहते हुए मैं मीठी नींद सो गया।

ट्रेसी के घर गया। ट्रेसी की थकान उसके मुरझाये हुए चेहरे पर झाँक रही थी। स्कूल से थककर आई हुई ट्रेसी की ओर देखकर भी उसकी माँ ने उसकी पूछताँछ नहीं की। ना ही उसे खाने-पीने को दिया। शाम के छः बजे किसी ने ट्रेसी के कमरे की खि की पर हल्के-से दस्तक दी। ट्रेसी के खि की खोलते ही, एक औरत ने उसके हाथ में एक सैंडविच और एक सेब थमाकर गुडनाइट कहा और जल्दी में वह चल भी दी। मैंने देखा, ट्रेसी की आँखों में उभरी कृतज्ञता की भावना आँसुओं से भीग गई थी। ट्रेसी ने मुझसे कहा, 'वह दयालु औरत उसकी प ोसन थी।' स्कूल से घर लौटने के बाद पूरे तीन घण्टों में, भूखी-प्यासी ट्रेसी को हिम्मत नहीं हुई कि वह रसोईघर में जाकर कुछ खा-पी ले। शाम गहरी होती गई और मुझे सीने से लगाकर ट्रेसी ने बताया कि यह घर उसका नहीं है। उसके सगे माँ-बाप के घर उस पर बेहद जुल्म हुए, हर दिन मारपीट होती रही, एक बार बेवजह उसका हाथ तक जलाया गया। जब लगातार तीन दिन उसे भूखा-प्यासा रखा गया तब भूख से परेशान होकर, डरते-डरते उसने ९११ नम्बर पर फोन किया और पुलिस से कहा कि उसे बहुत भूख लगी है। पुलिस आई। नन्ही-सी बच्ची की ठीक से परवरिश नहीं की, उसको जान से मारने की कोशिश की, इस जुर्म में माँ-बाप गिरिफ्तार किए गए और ट्रेसी को असपताल पहुँचाया। असपताल में, बच्चों के वार्ड में ट्रेसी को छः महीने रहना प ा, क्योंकि ठीक होने पर भी उसे कोई फॉस्टर पेरेण्ट्स नहीं मिले थे। ह्यूमन रिर्सोसेज़ डिपार्टमेण्ट ने आखिर ट्रेसी को इस औरत के हवाले किया जो अपनी अभिनय-कुशलता से सरकारी अधिकारियों की आँखों में धूल झोंककर, ट्रेसी की फास्टर-मदर बनकर उसे अपने घर ले आई। इस सारे गोलमाल में, ट्रेसी की परवरिश के लिए सरकार से मिलनेवाले पैसे वसूल करना, यह एक ही हेतु था, इसलिए इस छोटी बच्ची की देखभाल, खाना-पीना, स्कूल पढ़ाई, कम से कम जरूरी चीज़ों को महत्व देने की, अपनी जिम्मेदारी को गम्भीरता से लेने की इस औरत को कभी जरूरत ही नहीं हुई। प्रेम, वात्सल्य, माया-ममता इन भावनाओं के अन्तरंग से इस औरत का दूर-दूर तक का भी कोई वास्ता नहीं था।

ट्रेसी की प ोसन, एक भारतीय महिला ब ी दयालु और भली औरत थी, इसलिए ट्रेसी का दुबला शरीर अब तक उसकी साँसों को सँभाले हुए था। प ोसन रोज़ रात ट्रेसी को बेडरूम की खि की से खाना दे जाती थी। प ोसन की बेटी ट्रेसी के ही स्कूल में पढ़ती थी। वह अपने साथ ट्रेसी के लिए भी दोपहर का खाना ले जाती थी और लंच-रूम में ट्रेसी से मिलकर दोनो मिल-बाँटकर खाना खातीं थीं। छुट्टी के दिन जब कभी भूख कुछ ज्यादा ही सताने लगती थी तब फॉस्टर-मदर का गुस्सा, चीखना-चिल्लाना सहती हुई ट्रेसी रसोई में पहुँच जाती। जल्दी-जल्दी फ्रिज खोलकर दूध, ब्रेड, सेब या हाथ में आई कोई भी खाने की चीज़ लेकर, दौ कर अपने कमरे में पहुँच जाती थी। अपने कमरे में आकर, कप ों की आलमारी में छुपकर अपनी भूख मिटाते हुए बेचारगी छा जाती थी उसके चेहरे पर। नहीं जानती थी ट्रेसी कि उसके साथ ही ऐसा क्यों हो रहा है? इस ख्याल से कई बार इस अभागी ल की का रो-रोकर ऐसा हाल हो जाता था कि उसके अकेलेपन को भी अपनेआप पर तरस आने लगता था। ट्रेसी के नसीब में न अपना घर था, न आँगन, न माँ-बाप, न

भाई-बहन, न तीज-त्योहार के खुशनुमा अवसर। रसोई से खाने की भीनी-भीनी खुशबू आ रही है, माँ उसे प्यार से खाने के लिए बुला रही है, यह सपना कहीं खो गया था उसके लिए। वैसे देखा जाए तो घर एक बहुत ही प्यारी, सुरक्षित, बिलकुल अपनी निजी जगह है, परन्तु फॉस्टर-होम नामक इस घर की दीवारें हर वक्त ट्रेसी को अजनबी आंखों से घूरती रहती थीं, डराती रहती थीं। काँप जाती होगी उसकी नन्ही रूह इस आतंक से, पर वह बेचारी असहाय, निर्बल बच्ची करे तो क्या करे?

अनुभवों की क्रूरता, कठोरता से इस नन्हीं-सी जान के कोमल पाँव काँप नहीं उठे, बल्कि वह ज्यादा ही समझदार बन गई थी। शनिवार, इतवार या छुट्टी के दिन बिल्डिंग के बाकी बच्चे पार्क में खेलने जाते थे। सिनेमा या नाटक देखने जाते, स्केटिंग या तैरना सीखने जाते थे। लौटते वक्त जिद करके माँ-बाप के साथ फास्ट-फूड रेस्टोरेण्ट में जाकर, 'हैपी मील' खाकर, हैपी मील के साथ मिलने वाले खिलौनों के साथ खेलते हुए, खुशी-खुशी उछलते-कूदते हुए घर लौट कर आते थे। उन्हीं छुट्टी के दिनों में ट्रेसी, फॉस्टर-मदर की नज़र बचाकर, अपार्टमेण्ट बिल्डिंग में रहने वाली एक बूढ़ी औरत के घर जाकर थो ा-सा काम करती थी। अपने नन्हे दुबले हाथों से जैसा भी बन प े अकेली वृद्धा के घर की सफाई करती थी। कुर्सी पर ख ी रहकर, सिंक में रखे हुए बर्तन माँजती थी। प्लास्टिक के ग्लव्स पहनकर बाथरूम की सफाई भी कर देती थी। वृद्धा ट्रेसी को कुछ पैसे देती थी। उन पैसों से ट्रेसी लंचरूम में कभी पोटेटो चिप्स का पैकेट, जूस या दूध की बोतल या लॉलीपॉप खरीदकर खुश हो जाती थी। खुद कमाए हुए थो े-से पैसे, ट्रेसी की नज़र में बहुत ब ी रकम सही, उसे किसी खिलौने की दुकान में जाने की इज़ाज़त नहीं देते थे। फिर भी हफ्ते में एक-आध दिन ही सही, खुशी का मुँह ताकना नहीं प ता, इसी में ट्रेसी संतुष्ट हो जाती थी।

महीने में एक बार सरकारी दफ्तर से सोशल-वर्कर ट्रेसी का हालचाल पूछने उसके घर आती थी। उन दो दिनों में ट्रेसी का खास ख्याल रखा जाता था। वह औरत खुद अपने हाथों से बकायदा अपार्टमेण्ट की कुछ ज्यादा ही ध्यान से सफाई करके हर चीज़ चमका देती थी। ट्रेसी के बिस्तर की चादर और तकिए का गिलाफ बदला जाता। बाथरूम की सफाई होते ही, वहाँ मिकी-माउस की डिज़ाइन का साफ, सुन्दर तौलिया रखा जाता। छोटे बच्चों के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला शैम्पू, साबुन, तेल, पाउडर, क्रीम, ब्रश सारी चीज़ें अपनी सही जगह पर रखकर बाथरूम में पीले रंग की रब की बतख रखना भी फॉस्टर-मदर नहीं भूलती थी। जिस दिन सोशल-वर्कर ने आना होता था, वह चालाक औरत अपने हाथों से ट्रेसी को अच्छी तरह से नहलाती थी। नया फ्राक पहनकर जब ट्रेसी सोशल-वर्कर से मिलती थी तब, 'ट्रेसी की अच्छी परवरिश के लिए इस घर का परिवेश अत्यन्त अनुकूल है,' इस प्रकार की राय फॉर्म पर दर्ज हो जाती और कॉफी पीकर सोशल-वर्कर चली जाती थी। सजी-धजी ट्रेसी की आँखों में छुपी पी ा, वेदना पढ़ने का कष्ट उठाने की सोशल-वर्कर को कोई जरूरत महसूस नहीं होती थी क्योंकि उसकी नज़र को तनख्वाह मिलने की तारीख के सिवा कुछ ज्यादा पढ़ने की आदत नहीं होती थी। महीने के इन दो दिन के अपनेपन के व्यवहार के सहारे, महीने के बचे हुए दिनों में अपने-आप को फॉस्टर-मदर कहलवाकर अपनी ममता की झूठी नुमाइश की शेखी बघारनेवाली फरेबी औरत का कठोर व्यवहार सहते हुए, ट्रेसी अपनी बदकिस्मती की खरोंचों को सहलाते हुए जी रही थी। अपनी उम्र से कहीं ब ा दर्द सहकर हँस रही थी बेचारी।

ट्रेसी ने मुझे सीने से लगाकर, अपनी नन्हीं-सी जिन्दगी की ब ी दुखभरी कहानी जब मुझे सुनाई तब क्लास के दूसरे बच्चों के घरों में देखा हुआ खुशनुमा माहौल याद कर

मेरी आँखें भर आईं। ट्रेसी के दुबले हाथों ने मुझे यूँ कसकर पक रखा था कि मुद्दत के बाद मिला हुआ साथी कहीं उसे छो कर चला न जाए। पल भर के लिए मुझे लगा, काश मैं भूख मिटाने का लड्डू होता, प्यास की तृप्ति का पात्र होता, मेरे स्पर्श में संवेदनाएँ होतीं, मैं बोल पाता। उसके थके तन-मन को, उसकी भूख-प्यास को, उसके अकेलेपन को कुछ न दे पाने की असहायता थी मेरे पास, और कुछ भी नहीं था। मेरा जी बहलाने के लिए ट्रेसी मुझे घर के बाहर घुमाने ले गई। वैसे भी उसे अकेले घर से ज्यादा दूर जाने की इज़ाज़त नहीं थी। हम दोनों प ोसी के घर की सीढ़ी पर बैठ गए। प ोसी के छोटे-से बगीचे में चि याँ आपस में बतियाँ रही थीं। रंग-बिरंगे फूलों की महक अच्छी लग रही थी। 'फ्लफी तुम्हें नहीं लगता, चि यों को देने के लिए कम से कम हमारे पास ब्रेड का छोटा-सा टुक ा होना चाहिए था।' मेरे गाल पर अपने होंठ रखकर उसकी आँखें निरभ्र नीले आसमान को देखनें लगीं। आसमान की ओर देखते-देखते उसकी नज़र सामने के लम्बे दरख़्त की एक टहनी पर जा रुकी। उस टहनी में एक छोटा-सा खिलौना हवाई-जहाज अटक गया था। पीले रंग का, गुलाबी पंखा और गुलाबी डिज़ाइन का वह हवाई-जहाज ट्रेसी को इशारे करने लगा। पल भर के लिए उसकी आँखें सपनीली हो गईं। ट्रेसी के कमरे में कम से कम आज मैंने सिर्फ़ टूटी हुई गु ियाँ देखीं थीं। खूबसूरत खिलौने होंगे भी तो सोशल-वर्कर की विज़िट तथा सरकारी तनखा वसूली, इन खास बातों के लिए, बन्द आलमारी के अँधेरे में छुपे होंगे। 'फ्लफी, अगर तुम्हें पंख होते तो क्या तुम वह हवाई-जहाज मुझे ला देते?' ट्रेसी मुझे सहलाते हुए पूछ रही थी। ममता के लिए तरसता हुआ उसका स्पर्श मेरे बेजान अस्तित्व में बहुत कुछ दृढ़ रहा था। उसी वक्त फोन कम्पनी की ब ी वैन साइडवॉक के पास आकर रुक गई। वैन से ट्रेसी के परिचित एक वृद्ध इंसान उतरे, उनसे मेरा परिचय कराते हुए वैन पर बँधी हुई सीढ़ी को हसरत-भरी निगाह से देखते हुए ब ही याचनाभरे स्वर में ट्रेसी ने कहा, 'दादाजी, फ्लफी आज मेरे यहाँ मेहमान बन कर आया है। उसे देने के लिए मेरे पास कुछ भी नहीं। क्या आप अपनी सीढ़ी पर चढ़ कर, उस पे की टहनी में अटका हुआ, हवाई-जहाज मेरे लिए निकाल सकेंगे? प्लीज़ दादाजी, प्लीज़।' ट्रेसी के बालों को सहलाकर, थके हुए दादाजी ने वैन पर बँधी हुई सीढ़ी निकाली, पे के सहारे ख ी की और ट्रेसी को हवाई-जहाज निकाल कर दे दिया। यह भी कम न था कि ऐसे सहृदय प ोसियों के कारण ट्रेसी का बचपन थो ा-बहुत हँस तो लेता था। 'थैंक्यू दादाजी, जिन्दगी भर मैं आपका यह एहसान नहीं भूलूँगी। आज आपने मुझे और फ्लफी को ढ़ेर सारी खुशियाँ दे दीं है। थैंक्यू, थैंक्यू!' कहते हुए ट्रेसी ने प्यार से दादाजी का हाथ चूम लिया। दादाजी की आत्मीयता ने मुझे छू लिया। चलो, आज के दिन ट्रेसी की त पती-तरसती हुई बाल-सुलभ इच्छाओं द्वारा खटखटाया एक दरवाज़ा तो खुल ही गया था। ट्रेसी की झोली में हवाई-जहाज उतरा था।

हम दोनों घर लौट आए। बाथरूम ने जाकर ट्रेसी ने धूल से सने हुए हवाई-जहाज को अच्छी तरह से धोया। तौलिए से पोंछा। ड्राअर में रखा हुआ लाल, पीले, नीले फूलों की नक्काशी का बढ़िया-सा पेपर निकाला और उस कागज़ में टेप लगाकर मेरे लिए तोहफा बाँध दिया। तोहफा अपनी गु िया के तकिए के नीचे छुपाते हुए उसने शोखी से हँसकर कहा, 'देख फ्लफी, यह तोहफा तुम्हारे लिए है मगर सुबह तक बिलकुल मत देखना। सुबह जब अपना तोहफा देखोगे, तब ताज्जुब से, मारे खुशी के उछलने का नाटक करना भी मत भूलना, ठीक है न?' यह कहकर मासूम-सी बच्ची बाथरूम में गई, दाँत ब्रश किए और पुरानी नाइट-ड्रेस पहनकर बिस्तर पर आ बैठी। मेरा हाथ अपने हाथ में लेकर उसने प्रार्थना की, 'हे भगवान, फ्लफी की मैं ठीक से आवभगत नहीं कर सकी, इसलिए मुझे क्षमा

करना।' 'गुडनाइट फ्लफी!' कहकर उसने मुझे चूमा और मुझे सीने से लगाकर वह सोने का प्रयास करने लगी।

ट्रेसी के कमरे में नीले रंग की सुखद बरसात करता हुआ नाइट-लैम्प नहीं था। उसकी ज़िन्दगी में रोज़ रात सोने से पहले परी-कथा या लोरी सुनाने के लिए माँ-पिता के रूप में माया-ममता, प्यार-दुलार, वात्सल्यता-सुरक्षा नहीं थी। उसके साथ थी परमात्मा की समक्षता और उसका मायूस न होने वाला मासूम मन। एक नन्हीं-सी जान अपने दुर्बल शरीर में, ममता की हसरत लेकर जी रही थी, बिलकुल अकेली। ट्रेसी का अकेलापन, दुख-दर्द देखकर मेरा मन व्यथित हुआ। पे की टहनी में अटके हुए हवाई-जहाज को घर दिलाने वाले दादाजी भी यदि मिल जाते हैं, तो भी, ट्रेसी जैसी सच्ची, समझदार, कोमल, प्यारी-सी बच्ची के हिस्से में यह बनवास क्यों? पहली बार अपने बेजान खिलौना होने का, अपनी असमर्थता का मुझे बेहद अफसोस हुआ, दुख हुआ। आखिर, ट्रेसी को मैं मिला भी तो सिर्फ़ दो दिन का मेहमान बनकर !

*

वन में स्वर्ण-मृग

भुवनेश्वरी पाण्डे

क्यों इच्छा की सीता जी ने मृग-चर्म की?
क्यों पीछे भागे राजाराम स्वर्ण-मृग के?
यदि सब पूर्व निश्चित था?
और मृग मृग ना था
तो मृग वन के बीच आया क्यों?
यदि उनकी इच्छा ही निश्चित थी
तो घटना-क्रम के अनुसार ही
सब पात्रों ने निभाया अपना काम।

आज इस एकान्त में बैठी
जीवन चल-चित्र चला रही
पीछे दृष्टि दौ ाई तो सोच में प गई
क्या व्यर्थ किए सारे काम ही?
नहीं! निश्चित था मुझको भी
उतना मिलना, उतना छूटना
उतनी संगति, उतनी असंगति

व्यर्थ आँसू बहाए माटी न गीली हो सकी
व्यर्थ रातों को जागकर आँक जो ती रही
व्यर्थ सफलता के आशिर्वाद हो गए
व्यर्थ सुखी रहो की बातें हो गईं

वे लोग सह-निर्देशक से भी छोटे थे
तभी सारे वाक्यांश खोटे थे
परम-निर्देशक तो है कोई और
उसे नहीं देख पाते हम चारों ओर
तभी हम चाहते कुछ और होता कुछ और है
केवल पानी सींचने से क्या फूल होता है?

तुम किस गुमान के डेरे पे बैठे हो?
चलो नीचे उतर आओ
क्या मिली है ज़मीं आसमाँ से कभी?
केवल अपना काम करो और लौट जाओ
जो रंग तुम देख रहे शोख, चटक
कहीं दूर नियंत्रण उसका हो रहा
चाँद, सूरज के आने-जाने से
हवा, पानी का रंग बदल रहा

*****
****
****

कार्यरत और अवकाशप्राप्त व्यक्ति में एक अंतर यह है कि कार्यरत व्यक्ति को कार्य-काल के दौरान छुट्टियाँ मिलती हैं जब कि अवकाशप्राप्त व्यक्ति को अवकाशप्राप्ति के बाद एक भी छुट्टी नहीं मिलती।

भारत और हिन्दुस्तान

राजेन्द्र 'राजेश'

जैसलमेर क्षेत्र में लौंगवाला मरुस्थल के लम्बे-चौ े भाग में एक छोटा-सा कस्बा, उसमें छोटी-सी एक झोप ी। राजस्थान उसकी ओर से १९७१ के भारत-पाक युद्ध के गर्भ से जन्मी पाक का भारत में फिर से मिल जाने की कहानी कह रहा है। लौंगवाला की ल ाई भारतीय स्थल-सैनिकों और वायु-सैनिकों के शौर्य का बेजो उदाहरण थी।

युद्ध यथार्थ है, और उसे रोकना आदर्श। इन्हीं यथार्थ और आदर्श से प्रेरित हो कल्पना को आधार बनाकर कहानी की शांति-दीवार शब्दों की ईंट से जो ने चला हूँ। आशा है, मेरी कल्पना की यह शांति-दीवार युद्ध की सम्भावना से जर्जर इस विश्व को घेर ले ताकि सारा विश्व एक देश हो जाए। अच्छा तो चलें, मरुस्थल की उन झोपि यों में जहाँ एक झोप ी कुछ अधिक ही रंगीन है : जहाँ शकीना अपनी जवानी से लबालब देह को बचाने के लिए यातनाएँ सह रही थी।

जीविका का साधन, उन सारी झोपि यों में रहने वाली महिलाओं और बालाओं का, तन ही था जिसे बेचकर घर-गृहस्थी चलती थी। वहाँ हर रोज घर-घर में न जाने कितने मेहमान आते-जाते फिर भी वासना वहाँ मुँह बाए प्यासी की प्यासी ही रह जाती थी। देह के बदले में दो शाम भर पेट खाना और तन ढ़कने के लिए वस्त्र मिल जाते, बस इसी को पाकर झोप ी वाले अपने को धन्य समझते और आगन्तुक अतृप्त रह कर भी अपने को धन्य समझते थे।

शकीना की मुँह-बोली माँ, शकीना को आगन्तुकों की प्यास बुझा-बुझाकर रुपये पाने को तरस रही थी किन्तु शकीना ऐसा करने को तैयार नहीं थी। वह तो अपने को सपनों के संसार में पाल रही थी। वह संसार की और ल कियों की तरह घर बसाने की महत्वाकांक्षिणी थी। शकीना को अपना तन बचाने के लिए को ों की मार हर रात खानी प ती। वह प्रतिदिन एक नए भविष्य की कल्पना के सहारे काट रही थी। उसे विश्वास था कि एक-न-एक दिन कोई आएगा और उसे इस नारकीय जीवन से उठा ले जाएगा। किन्तु शकीना कहती भी किससे, वहाँ का घर-घर तो वही पेशा कर रहा था। चाहे हिन्दू हो या मुसलमान।

और संध्याओं की तरह एक दिन वह संध्या भी आ गई। सूरज अपना तन ढ़क कर सोने चला था कि शकीना को उसकी मुँह-बोली माँ ने उसे यातना की काली कोठरी में ढ़केल दिया और देह बेचने के लिए मज़बूर करने लगी। घर के दूसरे कमरे में दो भेि ये शराब के नशे में डूबे, शकीना के देह को नोंचने की प्रतीक्षा कर रहे थे। आज शकीना को भी जीवन का मो सामने दीख रहा था। को ों की मार से शकीना टूट रही थी। फिर भी अल्लाह को पुकार रही थी। कोई उसे बचा ले, इसी की पल-पल प्रतीक्षा कर रही थी। उसने, अपने को बेसहारा पाकर माँ से कहा, 'कुछ देर के लिए मुझे सोचने दे माँ; फिर जैसा कहेगी बैसा मैं करूँगी। ऐसा लगा जैसे उसके खुदा ने उसे ऐसा कहने को प्रेरित किया। जैसे कोई उसे आकर बचा लेगा।

भारत-पाक-युद्ध आज दिनभर कहर ढ़ाहता रहा। तोपें गोले उगलते नहीं थक रहीं थीं। व्योम, लगता था जैसे काले मेघ से ढ़ँक गया हो। संध्या होते-होते किशोर, भारतीय-स्थल-सेना का जवान, जो ल ाई ल ते-ल ते अपनी टुक ी से भटक गया था, और रात भी कुछ दूर निकल चुकी थी, भटकते-भटकते उसी कस्बे में आ गया। रात में उसे 'कहीं ठौर की खोज' ने संयोग से शकीना के दरवाजे पर पहुँचा दिया। शकीना दरवाजे पर कराह रही थी, जैसे किसी का इंतजार कर रही थी, जो उसके सपनों के अनुकूल हो। अचानक

शकीना किशोर को देख घबराई किन्तु उसने धीरज रख कर परिचय पूछा तो उसे हद तक शांति मिली। उसने सम्मान से उसको कमरे में बिठाया। भारतीय सेना के उस जवान को अपने पास पाकर उसे ऐसा लगा जैसे उसकी पुकार को अल्लाह ने सुन लिया हो। परिचय के बाद शकीना को यह जानकर और खुशी हुई कि सैनिक ने भी उसके दुख को देख, वहीं रात गुजारने की ठान ली।

दूसरे कमरे में दो भेि यें, जो शकीना की प्रतीक्षा में काफी उत्तेजित थे, शकीना और किशोर को बातचीत करते देख, शकीना के पास आए और शकीना को घसीटकर ले जाने लगे क्योंकि शकीना की कीमत आज की पहली रात के लिए पाँच हजार रुपये लग चुकी थी और उसकी मुँह-बोली माँ उन दो भेि यों से रुपये भी ले चुकी थी।

भारतीय सेना के जवान किशोर से न रहा गया। वासना की प्यास बुझाने वाले भेि यों की उसने भरपूर मरम्मत की और उन्हें धक्का देकर बाहर निकाल दिया। शकीना की माँ ने प्रतिकार किया तो किशोर ने शकीना के लिए मनमानी माँग पूरी करने की स्वीकृति दे दी।

शकीना भीतर से पिघल चुकी थी। आज उसके सपने साकार लगने लगे थे। उसकी पुकार अल्लाह ने सुन ली थी। वह नाच उठी। कल्पना की बारात आ चुकी थी। वह सुहाग-रात मनाने को प्रतिपल व्याकुल थी; फिर क्या था, उसने किशोर को खुला आमंत्रण दे दिया।

रात ग्यारह बजाने में व्यस्त है, इधर शकीना की माँ कमरा सजाने में व्यस्त है। आज वह अत्यन्त प्रसन्न है क्योंकि जिस शकीना को दो वर्षो से यातनाओं के कूप में रख रही थी, तब भी वह देह बेचने को तैयार न थी, अचानक आज अपने देह को न्यौछावर कर चुकी थी। और वह भी प्रसन्न मुद्रा में, स्वेच्छा से।

खाना खाकर शकीना किशोर के लिए बिछावन लगाती है और कहती है, किशोर! मैं यह यौवन-कलश सहर्ष समर्पित करती हूँ जिसे किसी ने को` की मार से मुरझाने की कोशिश तो अवश्य की किन्तु कोई हाथ तक नहीं लगा सका। मैं यह भी कामना करती हूँ कि तुमसे मेरी कोख से बेटा जन्म ले जिसका नाम मैं भारत रखूँगी। और यदि कहीं खुदा मेरी फरियाद सुने तो मेरी इच्छा है कि एक ही साथ दो बेटे जन्म लें एक का नाम भारत रखूँगी ही और दूसरे का हिन्दुस्तान।

इस तरह महत्वाकांक्षा से विभोर हो, शकीना अपना शरीर सौंपती है भारत के एक वीर जवान को। संयोग से शकीना, रजस्वला का समय मात्र एक दिन पहले ही पार कर चुकी थी। उसका मन यों भी पुरुष-संयोग के लिए व्याकुल था। मर्द के सान्निध्य की इच्छा तो पहले से ही जाग चुकी थी लेकिन और ल कियों की तरह नहीं। उसे तो ऐसा लगता था कि एक-न-एक दिन संयोग अवश्य बैठेगा कि उसके मानसिक स्तर का कोई पुरुष अवश्य मिलेगा।

संयोग, स्वयं आज संयोग बन कर संयोग से मिलने के लिए आतुर हो रहा था। इधर शकीना भी मदहोश हो रही थी, क्योंकि शकीना का मनचाहा पुरुष आज मिल चुका था। इसलिए वह समर्पित हो गई।

शकीना की सजावट में आज चाँद की शीतलता और सूर्य की उष्णता भी थी। चेहरे से रक्तरंजित सौन्दर्य-रस टप-टप चू रहा था। शकीना आज धरती की बेटी बन सुहाग-रात मनाने चली। धरती माँ उसकी गवाह थी उस रात की, अपनी बेटी की। किशोर के प्रवेश करते ही शकीना ने आलिंगन किया और चुम्बन से उसका अभिवादन भी। दूसरा क्षण अभी घ ी को नाप ही रहा था कि शकीना ने गंभीर मुद्रा में प्रश्न किया, 'अच्छा किशोर बाबू,

यह तो बताईए कि ल ाई ल ते समय ऐसा तो नहीं कि आप विरोधी सेना पर रहम की निगाह से देखते हैं? क्या मानवता पर भी ध्यान कभी जाता है?

किशोर ने गंभीर होकर कहा, 'नहीं शकीना, हमारे पास मात्र एक ही उद्देश्य होता है वहाँ, देश की प्रतिष्ठा को बचाना। वहाँ जाति, धर्म और भाई का रिश्ता छूता तक नहीं। लेकिन ऐसा प्रश्न तू क्यों पूछ रही है?'

'ऐसा इसलिए पूछ रही हूँ कि यहाँ के बहुतेरे मुसलमान भाई भारत में रहकर भी भारत के नहीं लगते। ऐसा लगता है कि जैसे यह उनका देश ही नहीं है। उनकी आत्मा पाकिस्तान में वास करती है। भारतीय सेना पर एक दिन दवाब प रहा था तो इसी कस्बे के मुसलमान प्रसन्न दीख रहे थे। ऐसा क्यों?'

'ऐसा इसीलिए कि मुसलमान का लगाव हिन्दुओं से नहीं हो पाता है। हिन्दू अधिक हैं और मुसलमान कम। हिन्दू यदि प्रेम भी दिखाते हैं तो उन्हें, हीन भावना से ग्रसित रहने के कारण विश्वास ही नहीं हो पाता है। यही कारण है कि नफ़रत और घृणा की आग में मुसलमान अपने को जलाते रहते हैं। यह उनकी गलती है, नासमझी है' किशोर ने कहा।

'ऐसी गलती और नासमझी तो हिन्दुओं में भी है, कुछ जो पाकिस्तान के पक्षधर और खुफिया हैं, उन्हें तो तुरंत कैद करवा देना चाहिए। यों तो हिन्दू अधिक उदार होते हैं, किन्तु बहुत से हिन्दू भी यहाँ गद्दार हैं जो अपने देश को बेच देने तक में भी नहीं हिचकते' शकीना ने कहा।

'तुम भी ठीक ही कहती हो शकीना। दुनियाँ की माँएँ भी आज जब नफ़रत और घृणा के इस वातावरण में जन्में बच्चों को अपने सीने से लगाकर लोभ से सने स्वार्थी दूध से पाल रही हैं तो उन बच्चों में इन माँओं के विषैले दूध विष पैदा करें तो आश्चर्य क्या?'

'देखिए किशोर बाबू, आप सभी माँओं को मत दोषी ठहराएँ। सभी माँएँ यदि कलुषित हो जाएँगीं ते यह दुनियाँ नहीं रहेगी। आदर्श माँओं में मैं भी एक माँ बनना चाहती हूँ। माँ बन कर बताऊँगी कि मेरा वह सपना कब साकार होगा, जिसे मैं दिल में बचपन से सँजोए हूँ। खुदा जानता है वह सपना' शकीना ने कहा।

'अच्छा शकीना, आओ अभी सपना पूरा किए देता हूँ,' कहते हुए किशोर ने बाँहें फैला दी। शकीना भी अपने को समर्पित कर, श्रद्धाभरी वासना के अथाह सागर में डूब जाती है।

तीन बजने की सूचना किशोर की एच.एम.टी. की क्वार्ज घ ी ने दी। वैसे वह भी घ ी पर नज़र डालता ही रहा था क्योंकि वह एक जिम्मेदार सैनिक था, जो युद्धरत भी था। अतः समय पर ध्यान रखना स्वाभावजन्य ही था।

न जाने किस आशंका से भर शकीना ने पूछ लिया कि, 'कहीं आपको ऐसा तो नहीं लगा कि मैं एक मुसलमान ल की हूँ, प्यार देने में कुछ कमी हो गई?'

'नहीं-नहीं, मैं तो तुम्हें पत्नी बनाकर यहाँ से विदा लूँगा। तुम एक दिन दुनियाँ की महान माँओं की पंक्ति में रहोगी। अच्छा एक बात पूछूँ?' किशोर ने कहा।

'हाँ-हाँ पूछिए।'

'शकीना इस ल ाई में पाकिस्तानी सेना की हार कैसी लग रही है तुम्हें?'

'सुनिए, हार और जीत दोनो देशों की प्रतिष्ठा की बात है। मैं भारत की हूँ, इसलिए निश्चित रूप से मेरे दिल से एक-एक दुआ भारत के लिए ही निकलती रहती है। किन्तु एक-दो बातें मैं भी पूछना चाहती हूँ कि युद्ध क्यों जरूरी हो जाता है? क्या मानव-मूल्य की रक्षा युद्ध से हो पाती है? क्या यह देश विश्व का एक खण्ड मात्र नहीं है? क्या

विश्व का हर व्यक्ति एक जैसा नहीं है? और उसी तरह क्या पाकिस्तान भारत का खण्ड नहीं है?'

'बस करो शकीना बस! तूने ऐसे प्रश्न किए जिसका उत्तर मैं अभी नहीं दे पाऊँगा। मैं तो तुम्हें समझ भी नहीं पा रहा हूँ। पहले यह तो बताओ कि कहाँ तक पढ़ी-लिखी हो?'

'छोि ए इन बातों को। मैं कहाँ तक पढ़ सकती थी। घर पर ही वासना की काली-कोठरी में पढ़े-लिखे वासना के कठपुतलों के बोल-चाल और व्यवहार से हमें रोज़ कुछ न कुछ शिक्षा मिलती रही। हमारी माँ भी हमसे कम खूबसूरत नहीं थीं। उनके चाहने वालों की कमी नहीं थी। अधिकतर पढ़े-लिखे लोग ही आते-जाते थे। हमारी ओर भी उनकी निगाहें रहतीं थीं। माँ की तो वेश्यावृत्ति के लिए आज्ञा तभी हो चुकी थी जब कि पूर्णरूप से मैं जवान भी नहीं हुई थी। धीरे-धीरे ज़ोर-ज़ुर्म भी होना शुरू हो चुका था क्योंकि माँ बूढ़ी हो चली थी। मैंने किताब के बदले पुरुषों को पढ़ा और अपने चारों तरफ के वातावरण को भी। इसी वातावरण को, जो घृणा से भरा प ा है। यहाँ की प्रतिक्रिया ने ही मुझे एक योग्य पुरुष पाने के लिए महत्वाकांक्षिणी बना दिया। अपने को, अपनी इच्छा से, किसी आप जैसे एक पुरुष को समर्पित करने की अभिलाषा से मैं भर चुकी थी, मेरी वह कामना और प्रार्थना आज पूरी हुई। मेरा जीवन धन्य हो गया। आप जैसे महापुरुष को मैंने अपना शरीर सौंपकर आज भावना की तृप्ति भी की और मनोकामना की पूर्ति भी।'

'शकीना, सचमुच तुम भी महान हो। काश, तुमसे एक महान पुरुष पैदा हो, जो विश्व का ही कल्याण कर दे शांति ला कर, जो युद्ध से आक्रांत, शांति-शांति चिल्ला रहा है। युद्ध एक विभीषिका है और उसमें छिपी हुई शांति भी अशांति है, जो मिथ्या संतोष उगलती है।'

'तब, युद्ध को रोकने का उपाय क्यों नहीं करते?' शकीना ने कहा।

'क्या करूँ, मेरा धर्म और मेरा कर्म मात्र ल ना है, सिर्फ़ ल ना। उपाय तो देश के सत्ताधारी ही कर सकते हैं। और वे शायद कर भी रहे होंगे' किशोर ने कहा।

'हाँ, किशोर बाबू ठीक कहते हैं आप। युद्ध करना तो आप लोगों की आदत हो चुकी है। आईए चलें, आनन्द के इस क्षण विशेष में मेरे हाथों से बनी एक कप कॉफी तो पी लें। जहाँ एक आनंद दूसरे आनंद से युद्ध करेगा। अच्छा भी लगेगा। क्योंकि आप युद्धरत एक सिपाही भी हैं।'

कॉफी बना कर शकीना किशोर के हाथों में सौंपती हुई मनु की श्रद्धा लगती है। घ ी अपनी सुई को आगे बढ़ा रही थी टिक-टिक। शायद सुबह होने का संकेत कर रही थी। सूरज भी सामने आ गया, लालिमा सहित। सूरज से भी नहीं रहा गया। वह भी शायद दोनो के प्रेम को देख कर जलन की पी ा अनुभव करने लगा था तभी तो दोनो को अहसास हुआ, खासकर किशोर को क्योंकि वह युद्ध के मैदान से, अपनी टुक ी से भटक गया था। और संयोग ने उसे शकीना से मिला दिया।

कॉफी पीकर दोनो शिव मंदिर की ओर चल दिए। शिव मंदिर जाकर दोनो एक-दूसरे के हो गए। शकीना हिन्दू धर्म को अपनाकर हिन्दू हो गई। सामने युद्ध, नर-बलि माँग रहा था। अपनी टुक ी से तुरन्त मिलना था किशोर को, इसलिए वो शकीना से विदा लेता है। किन्तु, वियोग का क्षण किशोर को सिकु ा रहा था। शादी पाँच मिनट पहले ही तो हुई है।

'आप क्यों सिकु रहे हैं? क्या शकीना का प्यार इतना कमज़ोर है? आप अपने को फैला दें, इतना जितना कि भारतवर्ष फैला हुआ है। मैं एक भारतीय पत्नी हूँ मुझे कलंकित न करें। आपके विचलित होने से भारत हम पर रोएगा और हँसेगा भी। और हाँ, सुहाग-रात का आनंद तो आपने रात भर लूटा ही है। और लूटना है तो युद्ध से सने स्वार्थी तत्वों को

लूटें। मानव में निहित कलुषित भावनाओं को लूटें। और वह मेरी झोली में लाकर भरते रहें। क्योंकि तोप के गोलों से वह नष्ट नहीं होंगी। मैं भले ही अवश्य उसे नष्ट कर दूँगी अपनी पवित्रता से। युद्ध उन्हीं तत्वों का तो परिणाम है, जिससे मेरी तरह कितनी सुहागिनें परेशान होंगी।'

किशोर ने शकीना को सांत्वना की दृष्टि से देखा। और चुम्बन की भेंट देकर विदा हो गया समर क्षेत्र की ओर।

शकीना निढ़ाल तो थी ही, इसलिए कि वह वीर सैनिक की पत्नी के रूप में अपने पति को युद्ध में भेज कर भारतीय परम्परा को निभा चुकी थी। यद्यपि विदाई की विभीषिका से मुर्झाई-सी भी लग रही थी। फिर भी, देश-प्रेम उसके लिए अपने प्रेम से ऊपर था। और सबसे ऊपर था वहाँ कर्त्तव्य-प्रेम। उसे यह भी नाज था कि संयोग से उसका पति उसके मन के अनुकूल मिला। विदाई के बाद वह पति की स्मृति को जगाए, कस्बे में घूमने निकल गई।

माँ भी खुश थी कि शकीना आखिर मान ही गई। लेकिन किशोर शकीना को वचन देकर गया है कि शकीना उसकी है - मात्र उसकी। दूसरा कोई भी उसे छू तक नहीं सकेगा। उसकी मुँह-बोली माँ को मनमाँगा नियत खर्चा दिया जाएगा। शकीना की माँ को यह शर्त अच्छी लगी।

किशोर को विदा हुए एक माह बीत चला था। ल ाई, वहाँ से तकरीबन पाँच किलोमीटर पर जारी थी। भारतीय सेना का मनोबल प्रतिदिन बढ़ ही रहा था। पाकिस्तानी सेना की धज्जियाँ उ रहीं थीं। किशोर अकेले ही कई अमेरिकन टैंकों को लज्जित कर चुका था। संवाद किसी न किसी रूप से शकीना को हर रोज प्राप्त हो जाता था। फिर भी पति की बहादुरी पर जितना उसे नाज हो रहा था, उससे कहीं अधिक युद्ध न समाप्त होने का गम भी खाए जा रहा था। इसलिए नहीं कि ल ाई जारी रहने पर उसके सुहाग के मालिक को कुछ हो न जाए, बल्कि इसलिए कि सारी मानवता का विनाश-चिन्ह नज़र आ रहा था। वह दो देशों की ल ाई से चिन्तित नहीं थी, बल्कि विश्व-युद्ध होने की सम्भावना से भयभीत थी।

महीना तो बीत ही गया, युद्ध बंद नहीं हुआ। शकीना एक ओर चिन्ता से परेशान थी, दूसरी ओर बार-बार मितली आने से। मासिक-धर्म भी बंद हो गया। शकीना काफी खुश भी थी। विश्व-युद्ध की चिन्ता और गर्भ-धारण की खुशी। समय बीतने लगा। नौ महीने ऐसे बीते कि जैसे नौ दिन गुजरें हों।

युद्ध बंद होने पर किशोर का कोई अता-पता नहीं चल रहा था। बस शकीना को हर माह का खर्चा किसी न किसी रूप से प्राप्त हो जाता, किन्तु पत्र नहीं आता।

भारतवर्ष ने युद्ध में विजय पायी थी। युद्ध ने बांग्ला देश के रूप में जन्म ले लिया था। किशोर को बांग्ला देश में भारतीय सरकार द्वारा प्रोन्नति देकर अधिकारी के रूप में भेजा गया था। जहाँ से पत्र आना असंभव था। शकीना पर विजय का प्रभाव प े बिना कैसे रहता क्योंकि वह उसके पति की भी विजय थी। बच्चे पर भी युद्ध और विजय का प्रभाव प ना स्वाभाविक ही था।

पूरे नौ महीने बाद एक साथ दो बच्चे जन्में और वह भी दोनों पुत्र ही। शकीना का मन-मोर नाच उठा। वह बेचैन थी उन्हें किशोर को दिखाने के लिए। उसने दूसरे दिन सुबह होते ही अपनी मुँह-बोली माँ को किशोर की खबर लाने के लिए सीमा पर भेजा। माँ भी खुश-खुश चली गई कि शायद किशोर सीमा पर आ गया हो और इस संवाद पर उसे कुछ इनाम दे। पर किशोर वहाँ नहीं था, वह तो अभी भी बांग्ला देश में ही था। माँ ने उसके

साथियों को संवाद दिया जो तुरन्त ही किशोर को भिजवा दिया गया। किशोर बांग्ला देश से छुट्टी लेकर सर के बल पहुँच गया शकीना के पास और एहसान के तले दब गया। फूल जैसे दो बेटों को देखकर क्या-क्या नहीं अनुभव किया उसने। पूरे कस्बे में उसने मिठाईयाँ बाटीं।

छठी के दिन खुशियों के बीच शकीना ने अपनी कल्पना के नाम के अनुसार एक का नाम भारत रखा और दूसरे का हिन्दुस्तान। भारत ब ा भाई हुआ क्योंकि वह हिन्दुस्तान से दस मिनट पहले जन्मा था।

दोनों बच्चे विलक्षणता से भरे थे। लालन-पालन भी राजकुमारों जैसा होने लगा। झोप ी में भी महल की खुशबू आने लगी। शकीना को विश्वास ही नहीं होता था कि यातनाओं के बीच सिसकियाँ भरने वाली शकीना कभी इस तरह का सुख भी भोगेगी। किशोर पत्नी को सुख देने में एक रत्ती भी नहीं चूक रहा था।

दो वर्षों के बाद शकीना पति की मर्जी से, माँ और दोनों बच्चों के साथ बम्बई चली गई। तीसरे वर्ष दोनों बच्चों का दाखिला एक अच्छे स्कूल में हुआ। किशोर की अनुपस्थिति में शकीना का मन भारत और हिन्दुस्तान से बहल जाता। अद्‌भुत प्रतिभा से सम्पन्न दोनों बालक समाज पर विशेष छाप छो ने लगे। पाँच वर्ष होते-होते ऐसा लगने लगा, जैसे विश्व की सारी समस्याओं से दोनों निपट लेंगे। ब ी ही खुशी से दिन कटने लगे।

बांग्ला देश तो पाकिस्तान से अलग राष्ट्र हो ही चुका था। उधर पाकिस्तान में सैनिक शासन भी शुरू हो चुका था, और उसके विरोध में आंदोलन शुरू होकर जोर पक ने लगा था। सिन्ध और ब्लूचिस्तान के लोग भारतवर्ष की ओर भागने लगे थे। शरणार्थियों के भार से भारत बोझिल होने लगा। मानवता की रक्षा का पुजारी भारत, शरणार्थियों को फटकार भी तो नहीं सकता था। जनसंख्या के भार से लदा यह देश शरण देने में असमर्थता का अनुभव करने लगा; क्या करे क्या न करे की स्थिति में आ गया।

इसी बीच पाकिस्तान ने बाहरी देशों के दबाव और अपने स्वार्थ में पुनः भारतवर्ष पर हमला कर दिया। युद्ध से जर्जर पर मनोबल से भरपूर यह देश जूझ गया फिर . . .। भयंकर युद्ध हुआ, इतना कि आकाश थर्रा उठा, धरती काँप उठी और मानवता शर्मा गई। भारतवर्ष की फिर विजय हुई। पाकिस्तान का एक खण्ड और हो गया जिसका मान सिन्धुस्तान प ा। किन्तु भारतवर्ष जीतकर भी चिन्तामग्न हो गया, क्योंकि पाकिस्तान भी तो इसका छोटा भाई ही है, जिसका खंड-खंड होना भी यह नहीं देख सकता था।

दोनों बालक युद्ध की विनाश-लीलाओं से चिन्तित होने लगे। माँ से बारी-बारी दोनों अपनी चिन्ता व्यक्त करते हैं। हिन्दुस्तान कुछ अधिक भावुक हो जाता है। वह पूछता है, 'माँ, आदमी तो सभी एक जैसे हैं फिर क्यों एक-दूसरे को मारने पर तुल जाते हैं?'

'तुम अभी नहीं समझोगे बेटे, ब े होगे तो अपने-आप समझ जाओगे।'

'हाँ माँ, ब े होकर तो समझेंगे ही और उपाय भी कर देंगे; क्यों भारत भइया, हम दोनों उपाय कर देंगे न?'

'हाँ हिन्दुस्तान, हम दोनों मिलकर ऐसा उपाय निकालेंगे कि कभी ल ाई ही नहीं होगी।'

दोनो पढ़ते-पढ़ते मैट्रिक की शिक्षा प्रथम श्रेणी में पास कर कॉलेज में गए। कॉलेज की पढ़ाई खत्म होते-होते दोनो की प्रतिभा और समाज-सेवा से सारा भारतवर्ष परिचित हो चुका था। भारतीय एकता, मानवता की रक्षा और विश्व की घटनाओं पर लगातार सोच

विचार करने के दोनों आदी हो चुके थे। ब ी-ब ी संस्थाओं में संलग्न होकर राजनीति में आगे आने लगे। समाचार पत्रों और पत्रिकाओं में दोनों चर्चित होने लगे।

कॉलेज के दिनों में ही हिन्दुस्तान को जाहिरा नाम की एक सुखी-सम्पन्न मुसलमान की सुंदर ल की से प्रेम हो जाता है, जिससे वह कोर्ट-मैरिज भी कर लेता है। जाहिरा पाकिस्तान चली जाती है क्योंकि उसके पिता पाकिस्तान में बसने बम्बई से चले गए थे। हिन्दुस्तान भी अपनी बीबी के साथ पाकिस्तान चला गया था। शकीना भी हिन्दुस्तान की शादी और पाकिस्तान जाने की मंज़ूरी देने को किसी तरह राज़ी हो गई थी।

पाकिस्तान जाकर वहीं की नागरिकता हिन्दुस्तान ने प्राप्त कर ली। वह समाज-सेवा और राजनीति में तन-मन से लग गया। सारे पाकिस्तान में हिन्दुस्तान की सराहना होने लगी। वहाँ सैनिक शासन के सभी विरोधी थे और हिन्दुस्तान सैनिक शासन के विरोध में आंदोलन का अगुआ बन चुका था।

इधर भारत भी गंगा नाम की एक हिन्दू ल की से प्रेम-विवाह कर लेता है। शकीना अब भारत, गंगा व अवकाश-प्राप्त अपने पति के साथ बम्बई में ही रहने लगी है।

एक दिन ऐसा हुआ कि अचानक पाकिस्तान में चुनाव की घोषणा हुई। हिन्दुस्तान ने भी चुनाव में भाग लिया और चुनाव में हिन्दुस्तान ने सफलता भी प्राप्त कर ली। जनता की आवाज़ के फलस्वरूप हिन्दुस्तान, पाकिस्तान का राष्ट्रपति चुन लिया गया। सैनिक शासन समाप्त कर, लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना में वह लग गया। सफलता उसकी संगिनी-सी बन गई।

माँ शकीना पाकिस्तान बधाई देने चली जाती है। हिन्दुस्तान को देखकर वह बहुत खुश होती है। उसे ऐसा आभास होने लगा कि उसका सपना, उसका हिन्दुस्तान अवश्य पूरा कर देगा। विदेशी ताकतें, रोज़ हिन्दुस्तान को भारतवर्ष के विरोध में भ काने की साज़िश करने लगीं थीं पर वह किसी की बातों में नहीं आ रहा था। शकीना हर रात हिन्दुस्तान से बातें करती और ऐसा अनुभव करती कि उसका बेटा विश्व के किसी भी देश के बहकाबे में आनेवाला नहीं है।

इधर भारत भी भारतवर्ष का राष्ट्रपति चुन लिया जाता है। माँ शकीना छः महीने हिन्दुस्तान के पास पाकिस्तान में रह कर भारत के राष्ट्रपति होने पर बधाई देने के लिए भारतवर्ष प्रस्थान करती है। शकीना वह क ी थी जो दोनों देशों के मधुर सम्बन्ध में प्रभावकारी कदम उठाने को इच्छुक थी।

पाकिस्तान से शकीना जब भारतवर्ष लौटते लगती है तब ऐसा लगता है जैसे सारा पाकिस्तान जहाँ एक ओर खुशी में उम प ा है, वहीं दूसरी ओर विदाई के गम में आँसू बहा रहा है; खुशी का कारण यह था कि वहाँ की जनता जान गई थी कि हिन्दुस्तान, पाकिस्तान की जनता की भावना को देखते हुए भारत को सरकारी पत्र भेज रहा है। हिन्दुस्तान ने जो पत्र दिया भारत के नाम, उस पत्र में लिखा...

'भाई जान,

आदाब, ब ी खुशी से ये दिन इम्तहां के, काट रहा हूँ। अम्मीजान को एक खत के साथ भेज रहा हूँ। यह खत कुछ और नहीं, अम्मीजान का सपना है, जिसे हम दोनों ने भी बचपन से पाल रखा है।

भारत और पाकिस्तान एक ही देश के दो नाम हैं, जैसे भारत और हिन्दुस्तान एक ही माँ के दो बेटे। अलग यह किसी कारण से भी हुआ हो, हमें इन बातों में नहीं प ना है। अलग होने के बाद से दोनों देश गलतफहमियों के शिकार होते आए हैं। विदेशी हस्तियों ने जब-तब ल ा-ल ाकर मजे लिए हैं। और आज, जब मैं पाकिस्तान का राष्ट्रपति बना हूँ,

तब भी विदेशी शक्तियाँ कान भरने से बाज नहीं आ रही हैं। हमारे कान पक चुके हैं। करूँ तो क्या करूँ? ल ॅ तो किससे ल ॅ? ब ी ही मुश्किल में प गया हूँ भइया।

हमारी एक राय है और प्रार्थना भी; छोटे भाई के नाते द्वारा इसे खुशामद मत समझिएगा। आप के ऊपर भी तो कई देशों का दबाव है; किन्तु विश्व-शांति का भार भी तो आप ही ने उठाया है।

मेरा ख्याल है कि क्यों न दोनों देश मिलकर फिर से एक हो जाएँ। कोई भारत कहेगा या हिन्दुस्तान, बात तो बराबर होगी न ! कोई फर्क तो नहीं प ेगा। सारी दुनियाँ एक सबक तो लेगी। और एक दिन सारा विश्व ही एक हो जाएगा। तब न आर्थिक विषमता रहेगी और न तनावपूर्ण वातावरण। सारी दुनियाँ को, दुनियाँ के लोग, भारत कहकर पुकारेंगे। फिर दूसरे ग्रह के लोगों से सम्पर्क स्थापित होगा। पूरी शांति का यही एक उपाय है, नहीं तो आदमी अब नहीं बचेगा भइया। मरने का इतना ब ा उन्तज़ाम कर लिया है इसने कि सारी दुनियाँ श्मशान बन कर रह जाएगी। एक कुत्ता तक भी भौंकने के लिए नहीं बचेगा। अभी वक्त है; इसलिए मैं आपको अपना सहयोग देने का संकल्प ले चुका हूँ, क्योंकि यह काम आप ही से संभव है।

यह बधाई का खत केवल खत नहीं है, बल्कि हम-दोनों के सपने साकार होने का संदेशा भी है। खासकर हम दोनों का यह काम दोनों के जीवन को धन्य कर देगा, क्योंकि माँ भी शुरू से यही सपना सँजोए हुए हैं....।

शकीना भारतवर्ष लौटते ही बेटे को चिट्ठी देती है, और बधाई भी। भारत पत्र पढ़ते ही खुशी के आँसुओं से भीग गया। वह तुरन्त समस्या पर विचार-विमर्श करने का आयोजन करता है। प्रधानमंत्री से परामर्श के बाद तुरन्त हिन्दुस्तान को सूचना देता है। हिन्दुस्तान ब े भाई भारत को निमंत्रण देता है। निमंत्रण के बाद भारत अन्तर्राष्ट्रीय यात्रा पर माँ शकीना के साथ प्रस्थान करता है, और वहाँ जाकर विधिवत् दोनों देश, एक हो जाते हैं; और दोनों का नाम पुनः भारतवर्ष हो जाता है।

पाकिस्तान में ही दोनों भाई मिलकर भारतवर्ष का तिरंगा झंडा फहराते हैं और राष्ट्रीय धुन बजने लगती है....

'जन गण मन अधिनायक जय हे ....' xxxx

सच!

पाराशर गौ

सोच-सोच कर, समझ में
है नहीं ये आ रहा
यहाँ आदमी को आदमी
क्यों निगल रहा!
जीभ में मिठास है
शब्दों में खटास है
एक हाथ में है फूल
दूजे में कटार है
उसकी इस प्रवृत्ति को
कोई नहीं समझ है पा रहा!
स्वार्थी है मन, स्वार्थी है तन
स्वार्थों से घिर गया है आदमी
चाटुकारिता निगल गई
सर से पाँव तक आदमी
अक्स ढूँढ़ता है उसका उसको
फिर भी भी में तन्हा है आदमी
अपने आस-पास बुनके जाल
अपने ही जाल में फँस गया है आदमी
रास्ते खुले हैं, आँख है खुली
फिर भी पाँव को वो बढ़ा नहीं पा रहा!
धरती को चीरकर
अब निगाह है आसमाँ पर
बढ़ गई है भूख उसकी
खुल गई है जुबाँ
आपा-धापी, मारा-मारी की
मार में, कुछ भी सोच नहीं वो पा रहा!
आँखों में है जलन
सीने में है धुआँ
मानवता मर चुकी है उसकी
सी गई है ज़ुबाँ

खोज उसको वो नहीं है पा रहा!
इर्द-गिर्द भी है
झूठ के सहारे है ख ा
सच को वो पचा नहीं है पा रहा। ¶

मृत्यु और अमरता

आचार्य डॉ. प्रेमचन्द श्रीधर

तुम हो शाश्वत नियम जगत का
कौन नहीं है तुमसे परिचित
तुम लगती हो क्रूर,
परन्तु हो कृपालु भी
हर लेती हो देह जीव का,
पर तुम पुनर्जन्म का अवसर देती हो,
हो दयालु भी।

आना-जाना, जाना-आना
यह सृष्टि का अटल नियम है
हर सर्जन के बाद प्रलय होती आई है
हर फल में फिर बीज छिपा है
उग जाने को,
सविता भी तो अस्ताचल में जाते हैं
फिर-फिर आने को।

और साँझ होती है,
सारा नभमंडल भर जाता है अंधकार से
केवल तारागण ही कुछ टिमटिमाते, कुछ जगमगाते,
यह आश्वासन देते रहते हैं
टिका नहीं है कभी अँधेरा
फिर-फिर यह कहते रहते हैं।

देखो-देखो आँख उठाकर पूर्व दिशा में
क्यों हो गए निराश बताओ घोर निशा में
वह देखो भगवान भास्कर उदय हुए हैं
अपनी तपती किरणें भू पर डाल रहे हैं
फिर हो गया विभोर जगत में चारों ओर
यही सदा होता आया है होता यही रहेगा।

तुम जिसको मृत्यु कहते हो
उसका नाम नया जीवन है
तुम जिसको पतझ कहते हो
वही वसन्त का शुभागमन है
मुझे पूर्ण विश्वास और पूरी आशा है
मेरी रत्ना बहन इसी शाश्वत सत्ता के

छो गई वह देह जो थककर चूर हुई थी
जिसने कितने पी ा के क्षण सहन किए थे
जिसने शशि को जन्म दिया,
फिर जाते देखा
जिसने अपने स्वजनों की लूटी देहों को
अपनी भीगी आँखों से था विदा किया
फूट-फूटकर सबको कुलराते देखा

फिर भी हार न मानी
क्योंकि वह विदुषी जागृत आत्मा थी
पर मृत्यु तुमने घेर लिया,
इस अमर ज्योति को
जो अनगिनत बुझे दीपों को,
देकर अपना प्रकाश
बस चली गई है छो यहाँ,
केवल ममता को।

वह ममता, समता, क्षमता,
ज नही हुई है
इस सृष्टि को देने प्रकाश,
बहन रत्ना फिर आएगी
परन्तु कहाँ?
किस देह में? फिर किस स्नेह में?
यही बताना बहुत जटिल है
हम सब भी तो राही हैं,
बस उसी राह के
कहीं तो मिलना होगा ही,
क्योंकि मंजिल एक है।

####

प्राकृत देह रथ, पाँच इन्द्रियाँ (जीभ,
नेत्र, कर्ण, नासिका तथा त्वचा)
पाँच घो मन रास (लगाम), बुद्धि
सारथि तथा जीवात्मा रथ में बैठा
हुआ यात्री है। इस प्रकार मन और
इन्द्रियों के संग में आत्मा सुख-दुख

अटल नियम में चली गईं हैं देह बदलने। भोगता है।

श्रीमद्भगवत्गीता यथारूप

फेमीनिज़म

(वैश्विक संदर्भ में नारीवाद की व्याख्या)

(गुजराती अध्यापक संघ के ५२वें अधिवेशन में दिया गया भाषण)

डॉ. रंजना हरीश

अनुवादकः डॉ. शशि अरोरा

अध्यक्षश्री, मंचासीनमहानुभावों, प्राध्यापक मित्रों,

फेमिनिज़्म् या नारीवाद के संबंध में जनसाधारण में ही नहीं, विद्वानों में भी तरह-तरह की भ्रांत धारणाएँ प्रवर्तमान हैं, जिनका निराकरण आवश्यक है। इस गंभीर एवं विवादास्पद विषय पर बोलने के लिए गुजराती अध्यापक संघ ने मुझे आमंत्रित किया इसके लिए मैं आयोजकों का और आप सब श्रोताओं का आभार मानती हूँ। अपने वक्तव्य में मैं नारीवाद की विभावना को स्पष्ट करने का यथाशक्ति प्रयत्न करूँगी।

अपने वक्तव्य का प्रारंभ मैं दो ग्रीक माइथोलोजिकल कहानियों के नारीवादी पुनर्कथन के द्वारा करना चाहूँगी। तदुपरान्त दो समकालीन अमेरिकन संदर्भ भी मुझे देने हैं :

पहली कहानी है :

. . . . और उसकी जीभ काट दी गई। बाद में फिर वह सदियों तक गाती रही। उसका गीत निश्चित ही 'कला के लिए कला' के सिद्धान्त पर आधारित था। उसके गीत का अर्थघटन असंभव था। अर्थघटन का प्रयत्न अर्थात् कला का उपदेश में परिवर्तन, अर्थघटन यानी कला का पतन।

ग्रीक मिथ के अनुसार थेरियस ने फिलोमेला पर बलात्कार किया था ओर वह बोल न सके इसलिए उसकी जीभ काट दी थी। तत्पश्चात दैवत्व के बल पर गूँगी फिलोमेला को उसने 'काव्य कोकिला' (poetic nightingle) बना दिया था। उस दिन से आज तक जीभ बिना की 'काव्य कोकिला' का मीठा स्वर पश्चिमी काव्यपरंपरा में गूँजता रहा है।

- (सुनीति नामजोषी के Feminist Fables में से)

दूसरी कहानी है :

'देव डेफने का पीछा करता है, डेफने भागती है। और डेफने को वृक्ष बना दिया जाता है। 'इसका तात्पर्य? तात्पर्य और क्या? इसका अर्थ यही कि यह अंजाम होता है कृतघ्न स्त्री का। डेफने हाँ कहती है। कहती है 'जी, जी, जी हाँ! 'इससे एपोलो खुश है लेकिन फिर भी एपोलो को बेचैनी हो रही है। कोई ल की देव के पीछे प जाए, ये तो ठीक नहीं है न। फिर डेफने शापग्रस्त होती है। वह वृक्ष बन जाती है। इसका अर्थ और क्या? इसका अर्थ भी यही कि कृतघ्न स्त्री का ऐसा ही अंजाम होता है !

डेफने हाँ कहती है। वह मौन रहती है। उसका 'टाइमिंग' सही है लेकिन फिर से एक बार वह शाप का भोग बनती है। एपोलो उसे वृक्ष बना देता है। इसका अर्थ? अर्थ और क्या? इसका भी अर्थ यही कि वृक्ष मौन रहते हैं।

- (सुनीति नामजोषी की Feminist Fables में से)

मेरे मन में, दो अमेरिकन संदर्भों में से पहला संदर्भ है :

पहला संदर्भ :

'क्या आप फेमीनिस्ट हैं?'

'नहीं तो, मैं फेमीनिस्ट नहीं हूँ'

'क्यों?'
'क्योंकि मैं पुरुष को धिक्कारती नहीं हूँ। मेरे तो पति है, प्रेमी है, ल का है।'
'उससे क्या?'
'उससे यही कि फेमीस्टि होना मेरे बस का नहीं।'

- (अरुणा सीतेश के Their Testimony में से)

दूसरा संदर्भ :

हाँ मैं फेमीनिस्ट ही हूँ, और पितृसत्तात्मक समाज में फेमीनिस्ट पर होने वाले अत्याचार सहन करने को तैयार हूँ. . .मैं सब कुछ छो दूँगी। युनिवर्सिटी की डीनशिप, प्रोफेसरशिप, सब कुछ। लेकिन अपना दृष्टिकोंण नहीं बदलूँगी। मैं फेमीनिस्ट थी, हूँ और रहूँगी।'

- (हेलब्रन के Who is Afraid of Feminism में से)

बात सदियों पहले के ग्रीस की हो या समकालीन अमेरिका या भारत में रहने वाली स्त्रियों की। बात अनपढ़ डाकूरानी फूलनदेवी की हो या विदुषी केरोलीन हेलब्रन की। चाहे जो कुछ हो बात तो एक ही है।

'काव्य-कोकिला' की उपाधि से स्त्री को सम्मानित करने से पूर्व थेरियस से लेकर समकालीन अमेरिकन युनिवर्सिटी के सत्ताधारियों तक प्रत्येक पितृसत्तात्मक समाज उसकी जीभ की आहुति माँगता है। सत्ता के बल पर उसकी जीभ को वश में करके उसके बदले में काव्य कोकिला, विदुषी, सन्नारी, पतिव्रता आदि उपाधियों या पुरस्कारों से गूँगी, वाचाहीन, असंबद्ध बकवास करने वाली स्त्री को काव्य-कोकिला के रूप में सम्मानित करने में पितृसत्तात्मक समाज को लेशमात्र भी संकोच नहीं होता। इतना ही नहीं, अपनी जीभ, शरीर या बुद्धि का ऐसा सौदा न करने वाली स्त्री को अपमानित करने,करवाने में भी उन्हें संकोच नहीं होता। कहाँ है परिवर्तन? कहाँ है इक्कीसवीं सदी में पूरे होशहवास के साथ प्रवेश करने को उतावला डी-कोलोनाइज़्ड विश्व? कहाँ है मनुष्य मात्र का, कहाँ है जीव मात्र का गौरव? पर्यावरणवादी जब जीवमात्र के अधिकारों को सामने ला रहे हैं तब विश्व की लगभग आधी बस्ती अर्थात् स्त्रियों के अधिकारों का विचार करने के जितनी मानसिकता लोगों में कहाँ है? उपभोक्तावादी समाज में स्त्री आज भी अधिकांशतः उपभोग की वस्तु है।

क्या प्रतिबद्ध साहित्य निम्नस्तरीय साहित्य है?

अपने साम्राज्य को अखंड रखने के लिए पितृसत्तात्मक विचारशैली द्वारा प्रदत्त अनेक सिद्धांतों में से एक सिद्धांत है - 'प्रतिबद्ध साहित्य, निम्नस्तरीय साहित्य है।' ऐसा साहित्य प्रचारात्मक होने के कारण, उपभोक्तावादी होने के कारण सौंदर्यानुभूति कराने में सक्षम नहीं हो सकता। सौंदर्यानुभूति तथा उसकी व्याख्या करने का अधिकार मानों प्रासादों में रहने वाले सामंतशाही, पितृसत्तात्मकों का ही हो। लेकिन ज़रा-सा, ध्यानपूर्वक देखें तो पता चलेगा कि जगत के प्रत्येक अल्पसंख्यकों का साहित्य प्रारंभिक काल में प्रचारात्मक ही था। लेकिन समय के साथ चलते-चलते, विकास की निश्चित श्रेणियों को पार करके उसने विश्व के उत्तम साहित्य में स्थान प्राप्त किया है। उदाहरण के लिए अश्वेत साहित्य को देखा जा सकता है। समकालीन साहित्य में मेरे मतानुसार सर्वश्रेष्ठ लेखन अश्वेत महिलाओं (टोनी मोरीसन, एलिस वॉकर, माया एन्जेलो आदि) के द्वारा हो रहा है। अश्वेत स्त्रीलेखन का मूल तो 'शिकायत' तथा 'विरोध' के स्वर में ही था। उनके लिए अन्य किसी भी रूप में अपने लेखन का प्रारंभ करना असंभव था। और फरियाद के स्वर के साथ समस्याओं की पोटलियों को लेकर साहित्य जगत में पदार्पण करने वाली अश्वेत स्त्रियाँ उच्चस्तरीय सौंदर्यानुभूति तक पहुँची ही हैं, यह बात भी निश्चित ही है।

समीक्षा के मानदंडों को स्थापित करने वाले, सम्पूर्ण समर्पण से अभ्यस्त सत्ताधारी, भले स्त्रियों के आक्रोशात्मक साहित्य को 'अधूरे समर्पण का फल' मानते हों। और 'नितांत निर्हेतुक प्रेम के निरूपण को साहित्य का सर्वोच्च लक्ष्य' मानते हों। लेकिन जीभ विहीन फिलोमेला को वह अनुकूल कैसे लगेगा? किस 'निर्हेतुक प्रेम' की बात करे ये जिह्वा-विहीन काव्य-कोकिला? विद्रोह नहीं तो कम से कम नए युग की काव्य-कोकिला शिकायत कर सके, इतनी शक्ति तो सदियों के अनुभव से उसे प्राप्त होनी ही चाहिए। लेखिकाएँ यदि फरियादी का फर्ज़ अदा करती रहेंगी तो उनका लेखन पत्रकारत्व के स्तर पर ही ठहर जाएगा।

उपर्युक्त विधान वैश्विक प्रवाहों के प्रति आँखमिचौनी का द्योतक है। समाज की साहित्यिक अनुभूति को गढ़नेवाले जिम्मेदार साहित्य मर्मज्ञों को अपने वैचारिक आइवरी टॉवर से नीचे उतरकर समकालीन Post colonial/post modern विश्व के बदलते जा रहे साहित्यिक परिवेश का सूत्र पक ना चाहिए और अपने समाज के एक पूरे वर्ग को बदलती जा रही परिस्थिति के साथ कदम मिलाकर चलने के लिए प्रेरित करना चाहिए। शिकायत के स्वर के साथ शुरू हुए प्रत्येक साहित्य ने अपनी योग्यता के बल पर श्रेष्ठतम साहित्यों में स्थान प्राप्त किया है, ऐसे उदाहरण कम नहीं हैं। तब फिर एक मात्र स्त्री की शिकायत के स्वर के कारण उसके प्रति असहिष्णुता बतानी न्यायपूर्ण नहीं है। अनुकंपा या विशेष उदारता बताकर स्त्रीलेखन की प्रशंसा करने की बात यहाँ नहीं है। बात है हक़ की, बात है उनके हक को उन्हें दिलवाने की, अपनी प्रतिबद्धता के लिए वे दंडित न हों यह देखने की। फिर तो यदि, उनकी कलम में धार होगी तो वे टिकेंगी। अपने गन्तव्य स्थल पर तो उन्हें स्वयं ही पहुँचना प ेगा।

नारीवाद की व्याख्या :

१. नारीवाद का प्रारंभ, पुरुष द्वारा की गई पहल :

नारीवादी चिंतन का प्रारंभ १८वीं सदीं में इँग्लैंड में हुए स्त्री-अधिकारों के आंदोलन से हुआ है, ऐसा माना जाता है। और यह भी कि इस आंदोलन का प्रारंभ जे.एस.मिल जैसे पुरुष ने किया था। रानी विक्टोरिया के दरबारी जे.एस.मिल ने स्त्री-अधिकार संबंधी बिल पास करवाने के लिए ब ी-ब ी ल ाइयाँ ल ी थीं। अनिवार्य स्त्री-शिक्षा, स्त्री को मतदान तथा उत्तराधिकार का हक मिलना चाहिए, यह सोचने वाला पुरुष था, स्त्री नहीं। उस ज़माने में जे.एस.मिल की बात स्त्रियों के गले नहीं उतरती थी। मिल जैसे पुरुषों ने नारी-चेतना, नारी विकास में रुचि न ली होती तो शायद विश्व का समग्र चित्र ही भिन्न होता। यह बात जितनी पश्चिमी देशों के लिए सही है उतनी ही सच्ची भारत के लिए भी है। स्त्री अधिकार की बातों का प्रारंभ राजा राममोहन राय, केशवचंद्र सेन, महात्मा फुले, आचार्य कर्वे, जस्टिस रानडे और गाँधीजी जैसे पुरुषों द्वारा ही हुआ था।

भारतीय नारीवाद साहित्य के अच्छे अध्ययनकर्त्ता न्यूयॉर्क की स्टेट युनिवर्सिटी के प्रोफेसर जेराल्डीन फोर्ब्स ने अपने लेख 'Caged Tigers: First Wave Feminism in India' में भारत में हुए नारी जागरण का यश, प्रसिद्ध समाज सुधारक पुरुषों को दिया है। इतना ही नहीं उपरोक्त लेख में उन्होंने 'नारीवाद अर्थात् पश्चिम के देशों से प्राप्त उधार विचार' जैसे तर्क का खंडन किया है। उन्होंने सबूतों के आधार पर सिद्ध किया है कि नारीवाद की प्रणेता मानी जाने वाली वर्जीनिया वूल्फ के लेखन काल (१९१५-४०) के दौरान भारत में नारीजागरण की घटना घटित हो चुकी थी। १९१७, १९२५ तथा १९२७ में क्रमशः WIA, NCWI, AIWC जैसे राष्ट्रीय नारी-संगठनों की स्थापना हो चुकी थी। उन सारे संगठनों का संबंध भारतीय समाज एवं भारतीय प्रश्नों के साथ था। इस तरह फोर्ब्स के मतानुसार भारतीय नारीवाद पश्चिम के अंधानुकरण का फल नहीं था। उससे बिल्कुल विपरीत, सत्य तो यह है कि भारतीय

नारीवादियों को पश्चिमी नारीवादी विचार स्वीकार न थे। क्योंकि 'इन भारतीय स्त्रियों को पश्चिमी नारीवाद को स्वीकार करने में गुलामी की बू आती थी' (फोर्ब्स, पृ ५२९)। शेक्सपीयर का केलीबन जिस तरह प्रोस्पेरो की भाषा बोलता है, इस तरह ये स्त्रियाँ गोरी स्त्रियों की 'नारी वादी', 'पुरुष विरोधी' भाषा बोलने को तैयार न थीं। कोलोनाइज़र के अनुकरण को आशीष नान्दी जैसे समीक्षकों ने कोलोनाइज़्ड् मानसिकता का मुख्य लक्षण माना है। भारतीय स्त्रियों को यह मंज़ूर नहीं था। अँग्रेज सल्तनत के विरूद्ध ल ाई में पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर तथा उसके सहयोग को स्वीकार करके वे स्त्रियों के दमन के अपयश का टोकरा रूढ़ि, रीति-रिवाज तथा समाजीकरण के मत्थे मढ़ कर एक अलग नारीवाद का रूप गढ़ रही थीं।

इस तरह 'नारीवाद का आरंभ' विषयक चर्चा से तीन मुद्दे स्पष्ट होते हैं :

१. नारीवाद (पश्चिमी या भारतीय) पुरुष द्वारा प्रेरित था।

२. पुरुष द्वारा प्रेरित और प्रारंभ किया गया यह आंदोलन पुरुष विरोधी नहीं था। मूल में यह सत्ता के दुरुपयोग-विरोधी विचारधारा से प्रेरित था, जो स्त्री-पुरुष दोनों के लिए जरूरी था।

३. भारतीय नारीवादी विचारधारा का अपना विशिष्ट रूप था, जो पश्चिमी विचारधारा से बिल्कुल विपरीत था।

२. मार्जिनल साहित्य : विकास के तीन स्तर :

नारीवादी विचारधारा के विकास को, अन्य परिधिवर्ती मार्जिनल्स के साहित्य के विकास की तरह, क्रमानुसार तीन स्तरों में बाँटा जा सकता है। मार्जिनल साहित्य के प्रत्येक अधिकारी अध्ययनकर्ता ने मार्जिनल साहित्य के विकास को तीन स्तरों में बाँटा है। पोस्ट कोलोनियल समीक्षा की अथॉरिटी माने जाने वाले ऐशक्रोफ्ट, ग्रीफिथस् तथा टीफिन ने अपनी पुस्तक 'The Empire Writes Back' (१९८९) में इन तीन श्रेणियों को imitative, reactive, selfaffirming नाम दिया है। उनके मतानुसार अनुकरण प्रेरित imitative स्तर में परिधि स्थित लेखक (मार्जिनल्स) सेन्टर द्वारा प्रस्थापित मूल्यों को अपनाकर सेन्टर पर स्थित कोलोनाइज़र का अनुकरण करके स्वामी को स्वीकार हो ऐसी भाषा में ही बात करते हैं। इस श्रेणी के लेखकों का स्पष्ट तथा एकमात्र आशय सेन्टर द्वारा स्वीकृति प्राप्त करना ही होता है।

शेक्सपीयर के 'टेम्पेस्ट' में केलीबन अपने कोलोनाइज़र प्रोस्पेरो की भाषा सीखता है। प्रोस्पेरो के मूल्यों को अपनाता है। दूसरी श्रेणी है प्रतिक्रिया प्रेरित reactive, जिसमें अपनी योग्यता का ज्ञान होने पर मार्जिनल्स अपने अधिकार के लिए जाग्रत होते हैं। सेन्टर स्थित स्वामी की तुलना में वे कमतर नहीं हैं, इसकी अनुभूति होने पर वे सेन्टर को चुनौती देते हैं और मालिक द्वारा सिखाई भाषा का, मूल्यों का, तर्कों का एवं कौशल का उपयोग वे अपना अधिकार प्राप्त करने या मालिक का प्रतिरोध करने के लिए करते हैं। 'टेम्पेस्ट' का केलीबन इस बात को स्पष्ट करके प्रोस्पेरो के समक्ष रखता है : 'तूने मुझे गुलामी के उपहार-स्वरूप अपनी भाषा दी। अब मैं उसका उपयोग तुझे शाप देने में करूँगा - यह है मेरा फायदा तेरी भाषा सीखने का।' किसी भी मार्जिनल लेखन के विकास में यह स्थिति अनिवार्य रूप से आती ही है। जिसे विकास के क्रम में एक टेम्परेरी फ़ेज मानकर निभा लेना प ता है। यह सभी समीक्षकों का मत रहा है।

और, उसके बाद आता है, मार्जिनल साहित्य के विकास का अंतिम आत्म निर्भरता प्रेरित self affirming स्तर। जिसमें अपना मूल्य स्थापित करके एक सुनिश्चित स्थान बना चुके मार्जिनल्स एक विशेष स्वस्थता के साथ अगले स्तर की आक्रमकता को त्याग कर साहित्य जगत में एक विशिष्ट स्थान बनाते हैं। शिकायत का स्वर तब सुनाई नहीं देता, क्योंकि शिकायत करने की अब जरूरत नहीं। अन्य सर्जकों की तरह वे भी निर्व्याज प्रेम तथा

सौंदर्यानुभूति की बात करने में अब सक्षम हैं। Post modern तथा Post colonial दोनों ही समीक्षा सिद्धांतों ने इन स्तरों को स्वीकार किया है। celebration of marginality and difference के post modern सिद्धांत ने इस अंतिम स्तर को गौरवपूर्ण स्थान दिया है। ये तो हुई समग्र मार्जिनल साहित्य की बात। इसी स्थापना के संदर्भ में अब हम नारीवादी विचारधारा के विकास पर विचार करेंगे।

३.१ नारीवादी विचारधारा : विकास के तीन स्तर :

मार्जिनल साहित्य के जिन तीन स्तरों की चर्चा ऊपर की जा चुकी है वे तीनों स्तर नारीवादी विचारधारा के विकास में भी स्पष्ट दिखाई देते हैं। नारीवादी तथा नारी-द्वारा लिखे गए ये दोनों प्रकार के साहित्य मार्जिनल साहित्य हैं और इसीलिए मार्जिनल साहित्य से संबंधित समीक्षा सिद्धांत इस साहित्य को समझने में उपयोगी है। नारीवादी साहित्य के संदर्भ में उपर्युक्त स्तरों का नामाभिधान एलन शोवाल्टर ने निम्नानुसार किया है :

१. प्रथम स्तर Feminine जो Imitative हैं।

२. द्वितीय Feminist स्तर जो Reactive हैं।

३. तृतीय Female अर्थात् मार्जिनल राइटिंग के विकास का अंतिम Selfaffirming स्तर।

नारीवादी समीक्षक Feminine, Feminist तथा Female संज्ञा का उपयोग अपनी इच्छानुसार करते रहे हैं। परन्तु मैं इस वक्तव्य में इन संज्ञाओं को एलन शोवाल्टर द्वारा की गई व्याख्या के साथ प्रयुक्त कर रही हूँ (शोवाल्टर, १९८१)। अपने वक्तव्य में मैंने नारीवाद के इन तीनों स्तरों तथा उनके लिए प्रयुक्त संज्ञाओं को यथावत रखा है, लेकिन नारीवाद परम्परा के विकास को (१९२० से आज तक) मैंने इन तीन कालों में बाँटा है :

३.२ फेमीनिन कालखंड (१९२० से १९४९ तक) :

पश्चिमी नारीवादी विचारधारा का प्रथम काल, वर्जीनिया वूल्फ और उससे प्रभावित लेखन का कार्य है।

नारी लेखन का अधिकांशतः संघर्ष वूल्फ की पुस्तक A Room of One's Own (1929) से प्रारंभ होता है। आज तक दिये गए प्रत्येक नारीवादी तर्क के मूल बीज वूल्फ की पुस्तक में विद्यमान हैं। इस दस्तावेज़ में से मैंने अपने वक्तव्य के लिए आवश्यक मुद्दों को निम्नानुसार छाँटा है :

१. साहित्यकार की सर्जनात्मक मनःस्थिति विषयक वूल्फ के विचार। वूल्फ के दृष्टिकोंण से सर्जन के उदात्त क्षणों में साहित्यकार Sex/gender का अतिक्रमण करके androgynous state of mind (उभयलिङ्गी चेतना) में प्रवेश करता है।

२. स्त्री को व्यक्ति या लेखिका बनना हो तो वूल्फ इसके लिए दो पूर्व शर्तें रखती हैं :

अ. स्त्री के पास अपना अलग कमरा होना चाहिए, A room of one's own.

ब. उसकी अपनी स्वतंत्र आमदनी होनी चाहिए, An Income of one's own.

इन दो पूर्व शर्तों के अतिरिक्त इस पुस्तक के दो वर्ष बाद ही लिखे गए लेख Professions for Women (1930) में वूल्फ अन्य दो पूर्व शर्तें भी रखती हैं। स्त्री को व्यक्ति/लेखिका बनने के लिए उपरोक्त दो शर्तों के अतिरिक्त अपने में विद्यमान एन्जल ऑफ दी हाउस भारतीय संदर्भ में गृहलक्ष्मी की छवि को छो ना प ेगा (Killing the Angle of the house) और अंत में अपने नारी-देह के अनुभवों को कागज़ पर उतारने की हिम्मत जुटानी प ेगी। वूल्फ इन चार में से तीन पूर्वशर्तों को पूरा कर पाईं थीं, लेकिन स्वयं इस लेख में, जैसा कि वे लिखती हैं, अंतिम शर्त का पालन वे स्वयं भी नहीं कर सकी थीं।

यहाँ यह सूचित करना आवश्यक है कि वूल्फ का Androgynous state of creative mind का सिद्धांत अर्धनारीनटेश्वर की परंपरा में जीने वाले भारतीय पितृसत्तात्मकों को इतना मुआफिक

आ गया कि उन्होंने वूल्फ द्वारा बाद में निरस्त कर दिये गए तर्क को पढ़ना या समझना उचित नहीं समझा। स्वयं को अत्यन्त मोर्डन मानने वाले विद्वान भी वूल्फ की पूर्व मान्यता तक ही सीमित रहे।

लेकिन सच बात तो ये है कि, 'A Room of One's Own' के दूसरे साल ही प्रकाशित लेख 'Professions for Women' में वूल्फ ने अपनी androgynous theory को स्वयं ही अस्वीकृत कर दिया। 'स्त्री का स्त्री की तरह न लिखना एक दुखद घटना है।' इतना ही नहीं स्त्री की संवेदना, उसकी अभिव्यक्ति तथा भाषा, पुरुष की भाषा से किस रूप में भिन्न होती है, इसकी चर्चा भी उन्होंने की।

वूल्फ ने नारी-लेखन विषयक लगभग प्रत्येक मुद्दे की चर्चा की लेकिन उल्लेखनीय बात यह है कि उनके स्वर में कहीं भी चुनौती नहीं थी। लेखन के 'पुरुष क्षेत्र' में पदार्पण करने वाली नारी के लिए वे मार्ग सूचित करती हैं, मदद करती हैं। कुछ हद तक सामने वाले पक्ष को किस तरह परास्त करना इसकी युक्ति बताती हैं। लेकिन यह सब वे स्त्री सुलभ ढ़ंग के अनुसार करती हैं। इसीलिए जेन मार्क्स नामक समीक्षक ने New Feminist Essays on Virginia Woolf (1980) में वूल्फ के सम्बन्ध में लिखते हुए व्यंग्यपूर्ण स्वर में उन्हें 'गोरीला फाइटर इन पेटीकोट' कहा है।

वूल्फ से प्रभावित नारी-लेखन के इस तबके में नारी-लेखन विषयक प्रश्नों की समानता होने के बावजूद, आह्वान के स्वर के बजाए स्वीकार का स्वर ज्यादा सुनाई देता है।

इस तबके के अंतिम भाग में प्रकाशित सिमोन दिबुवा की पुस्तक The Second Sex (1949) नारीवादी विचारधारा में एक नया सीमाचिह्न स्थापित करती है।

वूल्फ और फ्रॉयड के सिद्धांतों को निरस्त करके Equality of Sexes के सिद्धांत के अन्तर्गत स्त्री-पुरुष दोनों को समान धरातल पर स्थापित करके स्त्री को अपना स्थान दिलाने के लिए तत्पर इस पुस्तक के साथ अपने हक़ के लिए जूझने वाले Radical Feminism का प्रारंभ होता है। दिबुवा का मुख्य सिद्धांत है 'A woman is not born but made.'

Sex/Gender ('Sex' Biological है, जब कि 'Gender' Socio-Cultural Construct है) में उलझे हुए नारी-लेखन को इससे एक निश्चित दिशा मिलती है। और ४९ से दसेक साल तक फ्रेन्च फैमीनिस्ट इसी विचार का पिष्टपेषण करते रहे हैं - नारी लेखन, समीक्षा के बारे में किसी भी प्रकार की स्पष्टता किए बिना।

इस तरह Feminine स्तर के अंतर्गत भी एक विसंगत विचारधारा समानान्तर चलती है। दिबुवा तथा उनके अनुनायी, स्त्री-पुरुष के भेद को समाजीकरण (acculturation) का परिणाम बताकर समान मनुष्यों के लिए समान अधिकारों की माँग जारी रखते हैं।

३.३ फेमीनिस्ट काल-खंड (१९५० से १९७५) :

सिमोन दिबुवा के Equality of sexes के सिद्धांत पर रचित यह कालखंड विश्व भर में तहलका मचाने वाला कालखंड सिद्ध हुआ। यू.के., अमेरिका, फ्रान्स तथा अन्य पश्चिमी देशों के नारी जागरण के इस Reactive, आक्रोशग्रस्त कालखंड ने उन्हें विश्वप्रेस द्वारा, विश्वफलक पर पहुँचा दिया। सदियों से प्रताि त स्त्री-शक्ति ने जब सिर उठाया तो समग्र विश्व का उस ओर ध्यान आकर्षित हुआ। क्योंकि उनका आक्रोश शालीनता की सीमा तथा विवेक का उल्लंघन कर आत्यंतिक बन गया। पितृ सत्ता द्वारा लादे गए प्रत्येक बंधन तो फेंकने के लिए तत्पर स्त्रियाँ सार्वजनिक मार्गों पर आ ख ी हुईं। दबे-घुटे स्वर में शिकायत करने के बजाय, गि गि ाने के स्थान पर, रणचंडी के भयंकर आक्रोश के साथ वे घर की देहलीज़ लाँघ गईं। बंधन के metaphor जैसे अंतर्वस्त्रों को त्याग कर, बंधन के सामाजिक

metaphor स्वरूप पत्नीत्व तथा मातृत्व के रोल की अवहेलना कर उन्होंने अपने व्यक्ति होने का हक़ प्रस्थापित करने का प्रयास किया। और स्त्रीशक्ति का ये रौद्र रूप पुरुष को इतना भयंकर और अस्वीकार्य लगा कि विश्व भर के प्रेसों ने सार्वजनिक रास्तों पर आकर ख ी टॉपलेस स्त्रियों के फोटो चमकाए। और उसका उल्टा असर यह हुआ कि नारीवाद को समझे-बूझे बिना भारत के छोटे से छोटे गाँव में बसने वाले पुरुष ने भी 'नारीवाद' शब्द को अपना दुश्मन मान लिया और अच्छे से अच्छे विद्वानों ने, बुद्धि के स्तर पर नारीवाद को समझने के बजाय उसे 'वल्गर' जैसे विशेषणों से विभूषित करके छो दिया।

१९९७ में ऑटवा युनि. में अपनी मुलाकात के दौरान वीमेन्स राइटिंग सेन्टर के डायरेक्टर प्रो. डेबोराह गोरहाम के साथ हुई मेरी चर्चा में उनके द्वारा किया गया तर्क कुछ ऐसा था - 'जब भी लोग मार्जिनल्स का दावा करते हैं तब उन्हें आत्यंतिक तो होना ही प ता है। तभी उनकी सुनवाई होती है और ऐसा करके रेडीकल फेमीनिस्टों ने कुछ गलत नहीं किया है। लेकिन अन्य मार्जिनल्स की तुलना में फेमीनिस्टों को ब ी भारी कीमत चुकानी प ी है, क्योंकि मेरी दृष्टि में यही एक आंदोलन ऐसा था जो सार्वजनिक जगह छो कर घर के बेड-रूम तक पहुँच गया। पुरुष का ब े से ब ा गढ़ यानी उसका घर, उसका बेडरूम, उसकी शैय्या। और वहाँ तक पहुँचने वाले आंदोलन को वह किसी भी रूप में सहने को तैयार नहीं था। इसीलिए भयभीत पुरुष ने अपनी समग्र शक्ति के साथ, आंदोलन को दबाने के प्रयत्न में उसका नेगेटिव प्रचार किया।' उनके इस तर्क से मुझे सहमत होना ही प ा।

य्ह कालखंड नकारात्मक था, यह स्वीकारना ही प ेगा, Fire brand feminism के इस कालखंड के दौरान पुरुष और पुरुषसत्ता का विरोध ही मुख्य लक्ष्य था यह भी सच है। ज़मीन, मकान तथा पशुधन की तरह स्त्रीदेह को अपने अधिकार की वस्तु मानकर चलने वाले पुरुष को जीवनभर के लिए सबक सिखाकर सीधा करना, स्त्रीदेह का सम्मान कर सके ऐसा बनाना, Radical Feminism के Agenda का प्रमुख मुद्दा था। और इसीलिए इस दौरान हुई समीक्षा का झुकाव पुरुषों द्वारा अपने साहित्य में स्त्रीदेह के साथ कितना अन्याय हुआ है, इस ओर था। केट मिलेट का Radical Feminism शोध प्रबंध Sexual Politics (1969) इसका श्रेष्ठतम उदाहरण है।

इस कालखंड के दौरान, रेडीकल फेमीनिस्ट स्त्रियों ने अपनी देह पर सिर्फ़ अपना ही अधिकार हो सकता है, यह बात साबित करने के लिए अपने शरीर से संबंधित सभी निर्णयों में अन्य किसी के भी हस्तक्षेप को न सहने का निर्णय किया। 'Female body is female estate' के नारे बुलंद होते गए - जो पुरुषों के लिए, विशेषरूप से 'हाँ में हाँ' के अभ्यस्त पुरुषों के लिए - कितने भयावह रहे होंगे, इसकी कल्पना की जा सकती है।

३.४ रेडिकल फेमीनिज़्म :

१९६०-७० के नारीवादी आंदोलन को तात्कालिक समीक्षा के बदलते जा रहे मानदंडों ने भी बल प्रदान किया। पश्चिम के साहित्य-जगत में यह समय डेरिडा के डिकन्स्ट्रक्शन का, क्रिस्टेवा की 'इन्टर टेक्षुआलिटी' का, इगलटन की 'मार्कीसिस्ट' थियरी का था। ये सारे प्रवाह साहित्य की 'logocentricity' (तत्व केन्द्रितता) तथा Phallogocentricity (शिश्नकेन्द्रितता) को चनौती दे रहे थे। किसी भी ultimate referent का मूल से अस्वीकार इस समय की विविध साहित्य विचारधाराओं का मुख्य मुद्दा था। इस तरह, प्रस्थापित मूल्यों को नकार कर नए मूल्यों की स्थापना, उस समय की माँग थी और इसलिए इन सारे प्रयत्नों का सीधा आशय नारीवाद को समर्थन देने का न होने पर भी नारीवादी आंदोलनों के लिए इसने उपयुक्त वातावरण निर्मित किया। Capitalist/Patriarchal समाज की Phallogocentricity

(शिश्नकेन्द्रितता) का जितना भारी विरोध अन्य-विचारधाराओं को था उतना ही रेडिकल फेमीनिस्ट को भी था और इसलिए यह आंदोलन अधिक सफल हो सका।

पितृसत्ता के इतने तीव्र विरोध के बावजूद इस कालखंड के फेमीनिस्ट समीक्षकों का मुख्य लक्षण उनका male fixation रहा। पुरुष को केन्द्र में रखकर उसे स्त्री के प्रति किए अन्याय के लिए शब्दों की चाबुक से दंडित करने के अलावा इन नारीवादियों के पास अन्य कोई एजण्डा नहीं था। और इसीलिए शायद यह कालखंड इच्छित परिणाम न प्राप्त कर सका।

३.५ फीमेल गाइनोसेंट्रिक कालखंड (१९७९ से वर्तमान तक) :

१९७५ में पेट्रीशिया मेयर स्पेक्स के The Female Imagination के प्रकाशन के साथ नारीवादी विचारधारा के तीसरे और सबसे महत्वपूर्ण कालखंड का प्रारंभ हुआ। स्पेक्स ने पहली बार नारीवादी समीक्षा के बाइनाक्यूलर को पुरुष से हटाकर स्त्रीलेखन पर केन्द्रित किया। प्रथम बार किसी ने पुरुष को उजागर करने के बजाय स्त्री को, उसके मन को, उसके सर्जकत्व को समझने की कोशिश की। लेकिन यह काम शरू हुआ उस समय तक स्वयं स्पेक्स को भी यह ख्याल नहीं था कि वे नारीवादी विचारधारा की नई दिशा खोल रही थीं।

स्पेक्स की पुस्तक द्वारा नारीवादी अभिगम में आए 'यू टर्न' को सबसे पहले एलन शोवाल्टर ने नोट किया। १९७९ में प्रकाशित A Litrature of Their Own में शोवाल्टर ने नारीवादी अभिगम की बदलती जा रही तासीर पर ध्यान केन्द्रित किया।

इतना ही नहीं, ऐसे स्त्रीकेन्द्रित अभिगम के लिए 'फेमीनिज़्म' संज्ञा अपर्याप्त लगने पर उन्होंने फ्रेन्च में प्रयुक्त होने वाली संज्ञा का अँग्रेजीकरण करके 'gynocentric/gynocentricism' जैसी नई संज्ञाओं का प्रयोग किया। संज्ञाओं को प्रयुक्त करके उन्हें अस्पष्ट छो देना ठीक नहीं ही है। इसलिए १९८१ में फिर से एक बार एक दीर्घ लेख 'Feminist Criticism in Wilderness' में उन्होंने इस संज्ञा की गहन चर्चा की। स्त्रीदेह (gyno) का उसके लेखन पर प्रभाव होना बताकर, पिछले कालखंड के Equality of Sexes के मूलभूत सिद्धांत को अस्वीकार कर, शोवाल्टर ने Poetics of Difference को गढ़ना शुरू किया।

प्रो. श्री जयंत गाडित द्वारा गुजराती में हाल (१९९९) में प्रकाशित 'अनुआधुनिक साहित्य संज्ञाकोश' में gynocentric संज्ञा का अनुवाद 'त्रियाविवेचन (पृ. ८८-८९)' किया गया है। मेरी दृष्टि से 'त्रिया' शब्द के साथ रूढ़ हुई हीनतापूर्ण अर्थ-छाया को ध्यान में रखते हुए यह अनुवाद ठीक नहीं है। उसके स्थान पर 'गर्भाधीन' जैसी संज्ञा का उपयोग किया जा सकता है।

नारीवाद का ये अद्यतन कालखंड यदि नारीदेह के कारण, नारी को हीन मानने वाले फ्रॉयड तथा लेकान की essentialistic थियरी स्वीकृति की मुहर लगाता हो तो इसमें स्त्री का विकास कहाँ आया? यह प्रश्न बार,बार मुझसे पूछा जाता है।

इसकी स्पष्टता भी अनिवार्य है, क्योंकि जरा-सी गलतफ़हमी से gynocentric अभिगम के अर्थ का अनर्थ हो सकता है। यह विचारधारा स्त्री-पुरुष के biological भेद की नींव पर रची गई है। केवल इतनी बात के लिए वह फ्रॉयड या लेकान को स्वीकार करती है। लेकिन biological भेद के कारण, गर्भधारण करने की शक्ति के कारण, स्त्री पुरुष की तुलना में कमतर है, उसे यह विचारधारा नकारती है। स्त्री शरीर के कारण स्त्री का लेखन पुरुष से भिन्न है, इस बात का यह विचारधारा गुणगान करती है। एलन सिकस्यू तथा क्रिस्टेवा जैसे gynocritics गौरवपूर्वक स्वयं को biofeminist कहलवाते हैं। १९९८ में सिकस्यू ने अपनी भारत-

यात्रा के दौरान जे.एन.यू. में दिए गए व्याख्यानों में 'स्त्रीदेह के अनुभवों का उसके लेखन पर प्रभाव' विषय पर चर्चा की थी।

नारीवादी तथा गर्भाधीन अभिगम के भेद के संबंध में चर्चा करते हुए केरोलीन हेलब्रन ने लिखा है, 'नारीवाद ओल्ड बाइबल जैसा था। पुरुष द्वारा भूतकाल में किए गए एक-एक पाप को ढूँढ़-ढूँढ़कर उसके लिए उसे दंडित करना ही इस कालखंड का ध्येय था। जबकि गायनोसेन्ट्रिक अभिगम न्यू टेस्टामेन्ट जैसा है। क्षमा और कल्पना शक्ति के बल पर गुलामी के गर्त में से लोगों को मुक्त विश्व की ओर ले जाना यही उसका लक्ष्य है।' (Showalter, 81)

स्त्रीदेहधारी मनुष्य का लेखन बिलकुल अलग प्रकार का होता है, इस सोच पर आधारित यह विचार-शैली पुरुष द्वारा भूतकाल में किए गए अत्याचारों की शिकायत करना छो कर, उनसे बदला लेना छो कर, self pity में से बाहर आकर आत्मचेतना को विकसित करने का प्रयत्न करती है। स्त्री तथा उसके द्वारा सर्जित साहित्य अब इस विचार शैली के अध्ययन का केन्द्र है। और इस तरह feminist कालखंड की malecenteredness इस कालखंड में विदा होती है और वह womencentered बनाती है।

Post modernism तथा Post colonialism के अन्तर्गत celebration of difference की काफी महिमा हो रही है तब इस celebration में gynocentrics भी जु जाते हैं। उनकी प्रकृति Post modernist/Post colonial है। इस उपक्रम के रूप में स्त्रियों की लेखन परंपरा को ढूँढ़कर पुनः स्थापित करने का प्रयास वैश्विक स्तर पर जोर पक रहा है। भारत के संदर्भ में यह काम 'कॉलिंग फॉर वीमेन' जैसे प्रकाशक तथा सीज़ी थरो जैसे संशोधकों ने उठा लिया है।

अंतिम दशक में gynocentric अभिगम के कई उपविभाग हुए हैं। जैसे कि अश्वेत अमेरिकन लेखिका एलिस वॉकर द्वारा प्रारंभ किए गए 'womanism', क्रिस्टेवा तथा सिकस्यू द्वारा शुरू किए गए biofeminism (biological feminism), भारत की वंदना शिवा तथा उनकी जर्मन साथी मारिया मीस द्वारा प्रारंभ किए गए ecofeminism (ecological feminism) ये सारे विविध अभिगम स्त्री-पुरुष के biology के भेद के मूलभूत सिद्धांत को स्वीकार करते हैं।

नारीवादी (Feminist) अभिगम इतना pluralistic है कि उसे सम्पूर्ण रूप से समझने के लिए काफी गहराई में उतरना प ेगा। ऐसे अनेक वक्तव्य दिए जाएँ तब कुछ करने - या पाने का संतोष होगा। लेकिन ऐसे अपरंपार शेड्स वाले नारीवादों (feminisms) का मुख्य, ध्रुव वाक्य एक ही है - नारी की व्यक्ति, मनुष्य के रूप में स्वीकृति। देवी या दासी नहीं, केवल व्यक्ति। उसकी देह की आदरपूर्ण स्वीकृति।

उपसंहार :

इस वक्तव्य में मैंने निम्नलिखित मुद्दों की विस्तापूर्वक चर्चा की है :

क्या प्रतिबद्ध साहित्य निम्नस्तर का साहित्य है?

- ☺ नारीवाद की व्याख्या।
- ☺ नारीवाद का प्रारंभ, पुरुष द्वारा की गई पहल।
- ☺ मार्जिनल साहित्य : विकास के तीन स्तर : imitative, reactive, selfafferming ।
- ☺ नारीवादी विचारधारा : विकास के तीन स्तर :
  - ☺ फेमीनिन कालखंड (imitative)
  - ☺ फेमीनिस्ट कालखंड, फायरब्रान्ड फेमीनिझम (reactive) और उसे शक्ति प्रदान करने वाली अन्य literary theories ।
  - ☺ फीमेल, गायनोसेन्ट्रिक कालखंड (selfaffirming)

उपरोक्त समस्त चर्चा के अंत में, मैं इस निष्कर्ष पर पहुँची हूँ कि फेमीनिज़म के संबंध में ऊटपटाँग चल रही विवेचना को बदलना चाहिए। 'सात पगला आकाशमां' जैसी

एक-आध पुस्तक के आधार पर गुजराती समाज के लिए, तथा समग्र भारतीय समाज के लिए नारीवाद जैसे अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय की व्याख्या नहीं की जा सकती। इस लेख द्वारा मैंने इस विषय की शास्त्रीय व्याख्या प्रस्तुत की है। यदि मेरा यह प्रयास, फेमीनिज़म से संबंधित सही धारणाओं को पाठकों के मन में पैदा कर सकेगा तो मेरा यह बोलना, लिखना सार्थक होगा।

*

ब बोली मुखरा

स्नेह ठाकुर

आज के नारी वर्ग पर
लगाया जाता है अभियोग
कि हो गई है वह
अत्यधिक मुखर।

हाँ,
यह सत्य है
आज का नारी समुदाय
अपनी दादी-परदादी की अपेक्षा
हो गया है
कुछ ज्यादा मुखर।

प्रायः सभी देशों की
प्रस्तर बनीं नारियाँ
जो अब तक चुप थीं
हो गई हैं वाचाल।

हर देश की दादी और परदादी
बोलती थीं सिर्फ़ मूक भाषा
दादा और परदादा को ही
बोलने और सुनाने का
अपनी बात मनवाने का
जन्मसिद्ध अधिकार था।

हर देश की अधिकांश नारियाँ
बाँटती हैं असीम स्नेह
जिसे है स्वीकारता
पुरुष प्रधान समाज;
और आज का पुरुष वर्ग तो
नारी की अभिव्यक्तियों को
देता है मान्यता।

पर जब प्रस्तर प्रतिमाएँ
जीवन्त हो
अधिकारों की माँग के लिए
संघर्ष करती हैं
तो प्रश्नों की बौछारें
चहुँ ओर से
उन्हें बींधती हैं।

मूकता को शब्द देने के लिए
स्वतंत्रता चाहिए
और सुनवाई होने के लिए
सत्ता चाहिए।

स्वतंत्रता और सत्ता से
मुखरी वाणी को
न दी जाए संज्ञा
ब बोली मुखरा की
क्योंकि
यह मुखराभिव्यक्ति
हर देश की
उन परदादियों को
देती है शब्दानुभूति
आज तक जो
चुप थीं।

सीता को देवी पद पर प्रतिष्ठित किया
पर उसे बिन दोष वनवास भी दिया
द्रौपदी को पुरुषों की सम्पत्ति माना
अर्धनग्न कर अपमानित किया।

अग्निपरीक्षा देने पर भी सीता
न कर सकी साबित अपनी पवित्रता
चुपचाप वनवास अंगीकार किया
न जाने कितना कुछ सहा
और उस बेज़ुबान सहने का
परिणाम क्या हुआ?
अन्ततोगत्वा
उसे जीवित शरीर अपना
धरती में समाहित करना प ा।

द्रौपदी ने भरी सभा में उपस्थित
आभिजात्य वर्ग के सामने हाहाकार किया
अपनी विवशता, नग्नता पर
चींख-चींख कर प्रलाप किया
पर सभा में बैठा
एक भी महापुरुष
उसे ढ़क न सका।

जब आज वही सीता और द्रौपदी
अन्याय के प्रति सिर नहीं झुकाती
तो उसे है दी जाती
उपाधि ब बोली मुखरा की !

xxxx

परिचय एवं आभार : इस अंक के वरिष्ठ, मूर्धन्य साहित्यकारों की आभारी हूँ।

आदरणीय पापा जी - राष्ट्रपति सम्मान विभूषित डॉ. अम्बाशकंर नागर जी, जो अनेक विशिष्ट पदों का भार उठाए हुए आजकल गुजरात विद्यापीठ की भारतीय भाषाओं और संस्कृति के डायरेक्टर भी हैं, ने न केवल स्वयं की रचनाएँ देकर मुझे भावातिरेक, आह्लादित किया वरन् अपने परिचित उच्चकोटि के कवियों, जैसे, अनेक काव्य-संग्रहों के रचयिता डॉ. किशोर काबरा जी, माननीय डॉ. रामकुमार गुप्त जी, आचार्य रघुनाथ भट्ट जी एवं डॉ. शशि अरोरा जी कवियत्री व सक्षम अनुवादक, इन सब की भाव-प्रधान रचनाओं को भेज कर इस पत्रिका को धनी बनाया, समृद्ध बनाया।

डॉ. रंजना हरीश यूनिवर्सिटी में अँग्रेजी विभाग की अध्यक्ष हैं, साथ ही इनकी हिन्दी और गुजराती की पक सराहनीय है। इन्होंने भारत और यू.एस.से उच्च शिक्षा प्राप्त की है। इनके विचार, विशेषरूप से नारी संबंधित रिसर्च लेख उल्लेखनीय हैं। इनका मैत्रीपूर्ण सद्भाव मुझे सदैव ही मिलता रहा है।

ममतामयी डॉ. सरला अग्रवाल कोटा की जानी-मानी, कई सम्मानों से विभूषित साहित्यिक हस्ती हैं।

सहृदय डॉ. परेश, उपन्यासकार, कहानीकार और कवि के रूप में चंडीगढ़ के एक प्रतिष्ठित साहित्यकार हैं।

डॉ. सुशीलकुमार फुल्ल, युनिवर्सिटी से अवकाशप्राप्त प्रोफेसर, वरिष्ठ उपन्यासकार, कहानीकार, कवि हैं और अब पूर्णरूपेण साहित्य-सेवा में संलग्न हैं।

डॉ. उषादेवी कोल्हटकर मूलतः मराठी लेखिका हैं, पर इनके हिन्दी कहानी-संग्रह भी किसी से कम नहीं। और सबसे ब ी बात नार्थ-अमेरिका में रहने के बावजूद भी ये दोनों भाषाओं में लिख रही हैं।

नार्थ-अमेरिका के ग्रेटर-ह्यूस्टन आर्य-समाज के विद्वान आचार्य डॉ. प्रेमचन्द श्रीधर भावपूर्ण कवि व प्रबुद्ध लेखक हैं।

श्री राजेन्द्र 'राजेश' व्यवसाय से तो वकील हैं, पर इनका मन अटक गया है साहित्य में। उपन्यासकार, कहानीकार के साथ ये कवि भी हैं। आजकल विशेषरूप से आध्यात्मिक साहित्य की ओर रुझान ज्यादा हो गया है।

श्री सूर्यकांत नागर सटीक, रोचक लघु-कथाकार एवं प्रबुद्ध कहानीकार हैं।

कनेडियन साहित्यकारों ने जिस सहज, स्नेह-सिक्त भाव और उत्साह से अपनी रचनाएँ वसुधा को दीं उनका आभार प्रकट करने में शब्दों को भी अपनी अकिंचनता का अनुभव हो रहा है। श्री सरन घई - लेखक, कवि, प्रकाशक, संपादक नमस्ते-हैलो कैनेडा, श्री पाराशर गौ - उत्तराखंड के जाने-माने आप्रवासी कवि, श्रीमती सुभाषिणी खेतरपाल -भावपूर्ण कवियत्री और लेखिका जो कई देशों में अपनी काव्य-सुगंध बिखेर चुकी हैं, हिन्दी के प्रति समर्पित श्रीमती भुवनेश्वरी पाण्डे, निर्मल मन से लिखने वाले श्री निर्मल सिद्धू, उर्दू के जाने-माने शायर श्री श्यामसुंदर सूरी, देश-प्रेम और आध्यात्म से ओत-प्रोत डॉ.सुशीला गुप्ता, 'चन्द्रशेखर आजाद' काव्य-संग्रह रचयिता एवं महर्षि कणाड विद्यापीठ सिसौना के संस्थापक आचार्य संदीप त्यागी, सभी का योगदान सराहनीय है; सभी की आभारी हूँ।

अंत में गुरू एवं ब े भाई, प्रख्यात लेखक डॉ. दिनेन्द्र त्रिपाठी - भूतपूर्व डीन, इंडियन इंस्टीच्यूट ओफ मैनेजमेन्ट अहमदाबाद, के प्रति पहले भी आभारी थी और हरदम रहूँगी, जिन्होंने न केवल लेखन व चित्रकला के लिए सदैव ही प्रोत्साहित किया वरन् सालों पहले अपनी इतिहास संबंधित पुस्तकों में चित्र बनाने का सौभाग्य व सम्मान भी दिया।

सस्नेह, स्नेह ठाकुर

स्नेह ठाकुर की प्रकाशित पुस्तकें

अनमोल हास्य क्षण	(नाटक-संग्रह)
जीवन के रंग	(काव्य-संग्रह)
दर्दे-ज़ुबाँ	(नज़्म व ग़ज़ल संग्रह)
आज का पुरुष	(कहानी-संग्रह)
जीवन-निधि	(काव्य-संग्रह)
आत्म-गुंजन	(आध्यात्मिक-दार्शनिक गीत)
हास-परिहास	(हास्य कविताएँ)
ज़ज़्बातों का सिलसिला	(काव्य-संग्रह)
The Galaxy Within	(A collection of English poems)
अनुभूतियाँ	(काव्य-संग्रह)
काव्य-वृष्टि	(संकलन एवं संपादन)
पूरब-पश्चिम	(आप्रवासी सम्बन्धित आलेख संग्रह)
बौछार	(संकलन एवं संपादन)
काव्य हीरक	(संकलन एवं संपादन)
संजीवनी	(स्वास्थ्य सम्बन्धी लेख)
उपनिषद् दर्शन	(अध्यात्मिक)
काव्य-धारा	(संकलन एवं संपादन)
काव्यांजलि	(काव्य-संग्रह)
अनोखा साथी	(कहानी-संग्रह)

प्रकाशक व वितरक

स्टार पब्लिकेशंज़ (प्रा.) लि.
४/५ बी., आसफ अली रोड
नई दिल्ली - ११०००२
भारत
Star Publishers' Distributors
55, Warren Street
LONDON – W1T 5NW
England

दिल्ली प्रेस की सरिता व अन्य राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय
पत्रिकाओं में भी रचनाएँ प्रकाशित